SCIENCE FOR SOCIETY, BIHAR

AIMS & OBJECTS :

- Science & Technology Communication / Popularistion
- Generation of scientific temper & self-reliance
- Create excitement in young minds
- Enable informed decision making at grass-root level
- Encourage intelligent debate on issues related to sustainable development

OUR ACTIVITIES :

- Organisation Of Popular Science Lectures/Demonstrations, State & National Seminars.
- On Scientific Policy Resolution of Govt. of India(1983)
- On Energy Crisis(1984) , Flood & Drought Control (1985)
- On Elementary education as Fundamental Right (1995)
- Bharat Jan Vigyan Jatha (1987, 1992)
- Year of Scientific Awareness (2004)
- Int. Year of Physics (2005)
- Org. of State Children's Science Congress Since 1993
- Training Camps/Workshops on
  Hydroponics, Science Behind So called Miracles
  Nature Study, Laser Education, Science Journalism
  Vermicomposting, Soil & Water Testing etc.

OUR ACHIEVEMENTS :

- Generating a State Level Network of Organisations/Individuals for conducting Science Communication Programmes on a Voluntary Basis
- Creating District Level Resource Group in Various Streams to empower local institutions of learning
- Skill development of Rural area Students/Teachers & Social Workers by Org. State / Regional / Local Training /Orientation Programmes
- Translation/Publication of Resource Material In Hindi

महासचिव, सायंस फॉर सोसाइटी, रसायन विभाग (ग्राउण्ड फ्लोर), न्यू बिल्डिंग, सायंस कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना - 800 005 की ओर से प्रकाशित एवं सत्या प्रिंट्स, कदम कुआँ, पटना-3 द्वारा मुद्रित ।

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस-2011 के अवसर पर
(संचार-सामग्री)

महिला वैज्ञानिकों के विचार एवं संघर्ष-गाथा

सायंस फॉर सोसाईटी, बिहार

सहभागिता : राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद, बिहार
श्रीकृष्ण विज्ञान केंद्र (NCSM), पटना

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस-2011 के अवसर पर
(संचार-सामग्री)

महिला वैज्ञानिकों के विचार एवं संघर्ष-गाथा

सायंस फॉर सोसाईटी, बिहार

सहभागिता : राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद, बिहार
श्रीकृष्ण विज्ञान केंद्र (NCSM), पटना

© : **सायंस फॉर सोसाइटी, बिहार**
C/o रसायन विभाग, न्यू बिल्डिंग,
सायंस कॉलेज, पटना-800 005
<www.scienceforsocietybihar.org>
Tel. : 0612-2907501

संपादक : **प्रो० एस० पी० वर्मा**
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
भौतिकी विभाग, सांयस कॉलेज,
पटना विश्वविद्यालय
<verma1946@gmail.com>

संपादन-सहयोग : **श्री उमेश कुमार**
कार्यालय-सचिव,
सायंस फॉर सोसाइटी, बिहार
<scienceforsocietybihar@yahoo.com>

सहयोग राशि : **Rs. 10/-** मात्र (प्रकाशन वर्ष : **2011 – 1000** प्रति)

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तिका राष्ट्रीय विज्ञान दिवस - 2011 के अवसर पर प्रेषित की जा रही है। राज्य में विज्ञान दिवस का आयोजन राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार, श्रीकृष्ण विज्ञान केंद्र, पटना एवं सायंस फॉर सोसाइटी, बिहार के द्वारा संयुक्त रूप से किया गया है। 2011 अंतर्राष्ट्रीय रसायन शास्त्र वर्ष भी है तथा विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी में महिलाओं के योगदान को रेखांकित करने के उद्देश्य से इस पुस्तिका की सामग्री सजाई गई है।

आज से 100 वर्ष पूर्व 1911 में मादाम क्यूरी को रसायन शास्त्र के नोबेल पुरस्कार से नवाजा गया था। खोज के प्रति उनका समर्पित संघर्षशील जीवन प्रेरणास्रोत का कार्य करेगा। साथ ही जीन विज्ञानी बार्बी, अंतरिक्ष यात्री सुनीता विलियम्स एवं कुछ भारतीय महिला वैज्ञानिकों के कार्य एवं जीवन को संकलन में प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है हमारे छात्र-छात्राएँ एवं शिक्षक-अभिभावक समूह इस संकलन से लाभान्वित होंगे तथा नवयुवक एवं युवतियाँ विज्ञान के शोध क्षेत्र में मजबूत सृजनशील कदम उठायेंगे। महिला वैज्ञानिकों के संघर्ष गाथा (संकलन) के सामग्री हेतु हम विज्ञान संचार पत्रिकाओं खास कर **विज्ञान प्रगति**, (निस्केयर प्रकाशन, नई दिल्ली), **शैक्षणिक संदर्भ** (प्रकाशन-एकलव्य, भोपाल) एवं **भारतीय विज्ञान अकादमी** का आभार व्यक्त करते हैं कि उनके द्वारा पूर्व प्रकाशित लेखों को हम इस संकलन में जोड़ पाये तथा विज्ञान संचार कार्यक्रमों के फैलते दायरे में इनका सदुपयोग करने का प्रयास किया है।

आपके सुझावों की आशा में

संपादक समूह

अनुक्रमणिका

क्र०	विषय	लेखक	पृष्ठ सं०
1.	मादाम क्यूरी	मंजुलिका लक्ष्मी एवं प्रेमचन्द श्रीवास्तव	5
2.	जीन विज्ञान की बेताज मल्लिका बारबरा मैक्लिंटॉक	नरसिंह दयाल	17
3.	कल्पना के पथ पर सुनीता विलियम्स	काली शंकर	29
4.	जैसी माँ वैसी बेटी	पूर्णिमा सिन्हा एवं सुपुर्णा सिन्हा	37
5.	विज्ञान की राह	कमर रहमान	43
6.	मैं वैज्ञानिक क्यों बनी ?	बिंदु ए० बंवाह	48

❐❐

मादाम क्यूरी

मंजुलिका लक्ष्मी एवं
प्रेमचन्द श्रीवास्तव

19वीं सदी के उतरार्द्ध में रूस के अधीन परतंत्र पोलैंड के एक अध्यापक दंपत्ति के घर दिनांक 7 नवम्बर 1867 को विश्व की महानतम वैज्ञानिक मादाम क्यूरी ने जन्म लिया था। अत्यंत संवेदनशील, कर्मठ और सज्जन माता-पिता की पांच संतानों (जोर्शिया सोफी, ब्रोन्या, जोसेफ, हेला और मान्या) में मान्या मादाम क्यूरी सबसे छोटी व लाडली थी। स्वलोदोवस्की कुलनाम वाले पूर्वजों से चले आ रहे प्रसिद्ध कृषक घराने में मान्या के पितामह प्रथम अध्यापक थे। पिता ब्लादिस्लाव स्वलोदोवस्की ने भी भौतिक विज्ञान के अध्ययन अध्यापन को ही जीविकोपार्जन का साधन बनाया। मां एक कुलीन विदुषी और अत्यंत सुंदर, सुसंस्कृत महिला थी जो बालिकाओं के विद्यालय की प्रधानाध्यापिका रह चुकी थी। मान्या की दृष्टि में उसकी मां से अधिक सुंदर और बुद्धिमान कोई और व्यक्ति इस धरती पर हो ही नहीं सकता था। ऐसे वंश में मान्या भूमि से जुड़ी शक्ति और ऊर्जा तथा अत्यंत कुशाग्र बुद्धि लेकर पैदा हुई। चार वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने शीघ्रता से पढ़ना सीख लिया। एक और दुर्लभ गुण था उनमें कि उन्हें जो कुछ भी सिखाया जाता था उसे वह कभी भूलती नहीं थी। दस वर्ष की होने तक मान्या अपनी कक्षा की सबसे मेधावी छात्रा थीं। अपने सहयोगियों से उम्र में दो वर्ष छोटी होते हुए भी वह स्थायी रूप से गणित, इतिहास, साहित्य और नीतिशास्त्र सभी विषयों में सर्वप्रथम रहती थीं। आश्चर्य की बात तो यह थी कि उन्हें कक्षा में कभी कुछ कठिन लगता ही नहीं था। इसके साथ ही देश की परतंत्रता का कष्ट भी जहां एक ओर उनके हृदय को परेशान कर रहा था

वहीं दूसरी ओर उनके व्यक्तित्व को सुंदर बनाने की अप्रत्यक्ष भूमिका भी निभा रहा था। देश प्रेम की यह आग अंतिम क्षण तक मान्या के अंतर में बनी रही।

उस नन्ही मान्या के जीवन के ये वर्ष बहुत कठिन बीत रहे थे। मां की चिररूग्णता, पिता का अपने आत्मसम्मान पर अडिग रहने के कारण नौकरी में कठिनाइयां और अपमान, उनके आवास का छिन जाना और अंत में सबसे बड़ी बहन जोर्शिया की असामयिक मृत्यु। जोशिया मान्या की बहन ही नहीं मातृवत् संरक्षिका भी थीं, और मृत्यु से मान्या का यह पहला आमना-सामना था। उनका कोमल हृदय जोशिया के कष्ट से उबर पाता उससे पहले, तीन वर्षों के अंदर मान्या ने अपनी अत्यंत प्यारी मां को भी खो दिया। साढ़े दस वर्ष की उम्र से मां और बहन के स्नेह संबंधों से वंचित मान्या ने पहली बार अपने अब तक प्रार्थना और विश्वास से भरे हृदय में ईश्वरीय सत्ता के प्रति विद्रोह और प्रश्न को जन्म लेते अनुभव किया।

इन विपत्तियों और कठिनाइयों ने चारों स्वलोदोव्स्की संतानों के व्यक्तित्वों में एक अदम्य शक्ति और ऊर्जा भर दी। उन्हें हर बाधा और संघर्ष को जीत कर असाधारण मानव बनने की क्षमता मिल गई थी।

उनके पठन-पाठन में तकनीकी साहित्य भी शामिल थे। इसी के समानान्तर स्कूली पढ़ाई भी चलती रही। 12 जून 1883 को लगभग 14 वर्ष की आयु में मान्या ने विशेष सम्मान के साथ गौरवपूर्ण स्वर्णपदक लेकर अपनी स्कूली पढ़ाई समाप्त की। स्वलोदोव्स्की परिवार में यह तीसरा स्वर्ण पदक था। इसके पूर्व के दो स्वर्णपदक उसकी बड़ी बहन ब्रोन्या और बड़े भाई जोसेफ द्वारा प्राप्त किये गये थे।

पिता प्रो० स्वलोदोव्स्की की इच्छा थी कि जीविका का चुनाव करने से पूर्व मान्या अपने अब तक के कठिन परिश्रम से थके शरीर को विश्राम देने के लिए एक साल के लिए देहात में किसी स्वास्थ्यप्रद स्थान पर चली जाये।किशोरावस्था की उस रहस्यमयी वयस में शारीरिक सौष्ठव की ओर बढ़ती हुई मान्या को भीषण आलस्य ने आ घेरा। जीवन में प्रथम और अन्तिम बार वह निष्क्रियता में जी रही थी। अपनी प्रिय सहेली काजिया को लिखे एक पत्र में उसने लिखा, ''मैं जैसे भूल गई हूं कि अलजेब्रा और ज्यामिति भी कोई चीज है।''

अगले वर्ष वारसा लौटने तक मान्या के मस्तिष्क में भविष्य की रूपरेखा साकार होने लगी थी। प्रो. स्वलोदोवस्की आगे की पढ़ाई के लिए कोई आर्थिक सहायता देने में असमर्थ थे। पर चारों बच्चों में अपार आत्मविश्वास था कि एक स्वस्थ शरीर और साहस के सहारे वे अवश्य सफल होंगे। जोसेफ और हेला के ध्येय निर्धारित हो चुके थे। जोसेफ डाक्टर बनने जा रहा था और हेला गायिका। पर ब्रोन्या और मान्या की समस्यायें विषम थीं। फिर भी मान्या के त्याग और दूरदर्शिता ने मार्ग निकाल ही लिया। यह यह हुआ कि ब्रोन्या अपनी बचत के पैसों से पेरिस जाकर अपनी आगे की पढ़ाई जारी रखे। इस अवधि में मान्या समृद्ध घरों में गवर्नेस बन कर ब्रोन्या को अध्ययन के लिये आर्थिक सहायता भेजती रहेगी और जब ब्रोन्या डाक्टर बन आये तब उसकी बारी होगी मान्या की सहायता करने की।

अगले छः वर्ष मान्या के जीवन के कठिनतम संघर्ष, प्राणलेवा परिश्रम और एक असफल प्रेम प्रसंग की दुख भरी कहानी है। संघर्षों से ऊपर उठकर उसकी अदम्य जिजीविषा ने उसे जीवन के क्रूरतम पलों में भी टूटने नहीं दिया। उसका पहला सिद्धांत था कि किसी भी घटना या व्यक्ति को अपने ऊपर हावी न होने दो। इस बीच काकोव्स्की बुलेवार्ड की कक्षाओं में प्रवेश लेकर वह अपने अध्ययन को आगे बढ़ाने के सतत् प्रयत्नों में भी लगी रही।

मार्च 1890 में ब्रोन्या ने छोटी बहन मान्या को पेरिस आकर अपना अध्ययन पूरा करने का निमंत्रण दिया। उस समय परिस्थितिवश मान्या न जा सकीं और उसने भाई जोसेफ को जाने का सुझाव दिया। पर डेढ़ वर्ष पश्चात् मान्या संपूर्ण विश्व में अपनी ख्याति फैलाने की राह पर चल पड़ी। परतंत्रता से जकड़े अपने देश में अपनी मातृभाषा तक खुलकर न बोल सकने के दुख और अपमान से मुक्ति पाकर मान्या जैसी सुशील लड़की के लिए पेरिस में सब कुछ नितान्त अद्‌भुत था। यहां मान्या ने सॉरबॉन (पेरिस विश्वविद्यालय का एक अंग) में प्रवेश लेकर फ्रांसीसी अंदाज में अपना नामांकन करवाया ''मारी स्वलोदोवस्की'। यहां उसके जीवन का सबसे बड़ा सपना पूरा होने जा रहा था।

प्रारंभ में उसे भाषा और अपनी पिछली क्रमहीन पढ़ाई की अपर्याप्तता के कारण बहुत कठिनाइयां झेलनी पड़ी। पर उन कक्षाओं में अध्यापकों के

व्याख्यान के दौरान जो ''असाधारण, घटित हो रहा था'' उसके सामने इन कठिनाईयों का कोई औचित्य ही नहीं था। उस लड़की में अपने अध्यापकों के अंतर में छुपे हुये विज्ञान के रहस्यों को अंतिम बूंद तक हृदयंगम कर लेने की तीव्र पिपासा थी।

पेरिस प्रवास के प्रारंभिक दिनों में वे अपने बहन ब्रोन्या के घर में ही रह रही थीं। पर उस पारिवारिक शोरगुल और अतिथि अभ्यागतों के बीच मारी की पढ़ाई बाधित हो रही थीं। अंत में उन्होंने अपने विद्यालय के निकट ही रहने का निश्चय किया। आगे की व्यूह बहुत कठिन थी। उसे भिक्षुणियों जैसी न्यूनतम आवश्यकताओं वाला जीवन बिताना था। ब्रोन्या के साथ रहने से मिलने वाली सहायता से वंचित होकर, अब उन्हें केवल तीन फ्रेंक प्रतिदिन के खर्च पर ही भोजन, वस्त्र, कागज, किताबों और विश्वविद्यालय की फीस सभी का प्रबंध करना था। स्वयं पर कठोर प्रतिबंध लगाकर उन्होंने संसार की सभी भौतिक सुविधाओं को अपने जीवन से काट फेंका। सस्ते और बेहतर आवास की खोज में वह एक के बाद एक घर बदलती रहीं। सभी अंधेरे, ठंडे, सीलन भरे और कष्टप्रद थे। वह स्वयं को केवल पर्याप्त तेल खरीदने भर की सुविधा देती थी जिससे रात दो बजे तक लैंप जला कर पढ़ाई कर सकें। वे अपने सारे कपड़े और पेपर ओढ़ कर कड़कती ठंड से बचने की असफल कोशिश करतीं। कमर तोड़ थकान से उबरने का एक मात्र मनोरंजन था कपड़े धो लेना। उनकी जुझारू प्रवृति ने यह मानने से इंकार कर दिया कि भूख और शीत उसे हरा सकते हैं। पर भोजन की निरंतर कमी के चलते वारसा से आई वह स्वस्थ मजबूत लड़की बिल्कुल दुर्बल और पीली पड़ गई थी। वे बार-बार बेहोश होने लगीं। एक दिन सूचना पाकर ब्रोन्या का पति कैमिमिर दुलास्की भाग आया। पता चला मारी ने तीन दिनों से कुछ भी नहीं खाया है। वह बलपूर्वक मारी को अपने साथ ले गया। एक सप्ताह की देखभाल और भरपेट भोजन ने मारी के चेहरे की रंगत वापस ला दी। पर पढ़ाई के पीछे दीवानी मारी भला कब तक वह आराम की जिंदगी बिताती। वे अपने कमरे पर वापस लौट आईं और दूसरे दिन से पुनः हवा पीकर जीने लगीं।

काम के नशे में आकंठ डूबी मारी को लगता कि संसार में जितना भी कुछ जाना जा सकने लायक ज्ञान है उस सबको हृदयंगम कर लेने की

सामर्थ्य उसमें है। एक स्नातकोत्तर उपाधि उसके लिए अपर्याप्त थी। उसे दो प्राप्त करनी थीं। वर्ष 1895 में उन्होंने भौतिक विज्ञान और 1894 में गणित में यह उपाधियां प्राप्त की। यह काम की बोझिलता से भरे दिन कठिन तो थे ही, साथ ही बेहद चुनौतीपूर्ण भी। मारी ने उन्हें अपने जीवन के उत्कृष्टत्तम और पूर्णता से भरे दिनों के रूप में अंगीकृत किया।

अपनी ही महत्वकांक्षाओं से सम्मोहित, निर्धनता से पीड़ित और अन्तहीन कार्यभार से ग्रसित मारी जैसी महिला के जीवन में साधारण मानवियों की तरह प्रेम और विवाह जैसे कार्य-कलापों के लिए कोई स्थान नहीं था। किन्तु इन्हीं दिनों, 1894 के प्रारंभिक दिनों में ही मारी का परिचय डा. पियरे क्यूरी से हुआ। एक असाधारण प्रतिभाशाली फ्रांसीसी वैज्ञानिक पियरे क्यूरी की धारणा थी कि प्रतिभाशाली महिलाओं का मिलना अत्यंत दुर्लभ है, उस पर ऐसी महिला का मिलना जो भौतिक विज्ञानी शोध के गूढ़ विषयों को समझ सके, किसी चमत्कार से कम नहीं था। पर ये दो महान व्यक्तित्व एक दूसरे के लिए बने थे। पियरे के निरंतर प्रयासों के फलस्वरूप लगभग एक वर्ष पश्चात् मारी बहुत ऊहापोह के बाद इस संबंध के लिए तैयार हुई। उन्हें एक विदेशी से विवाह करना विश्वासघात जैसा लग रहा था। पर अंततः 26 जुलाई 1895 को मारी स्वलोदोवस्की श्रीमती मारी क्यूरी बन गईं।

विज्ञान के इतिहास में यह वैवाहिक बंधन एक महत्वपूर्ण घटना थी। अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित इन दो असाधारण वैज्ञानिकों के संयोग ने विश्व को रेडियम और पोलोनियम नामक दो सर्वथा नये तत्वों से परिचित कराया। अपने इन वैज्ञानिक लक्ष्यों तक पहुंचने के लिए इस वैज्ञानिक दंपत्ति के समक्ष यह विवाह एक सोपान के समान था। वे दोनों निरंतर अपने काम की धुन में डूबे रहते थे।

एक क्षण के लिए भी मारी के मन में दांपत्य जीवन, मातृत्व और वैज्ञानिक शोधों के बीच किसे अधिक महत्व दें, यह दुविधा नहीं उपजी। वे तीनों को समान रूप से सफलतापूर्वक निभाने के लिए कटिबद्ध थीं। विवाह के दो वर्ष पश्चात् मारी की झोली में विश्वविद्यालयी दो उपाधियां, एक शोधवृत्ति और मृदुकुत इस्पात के चुम्बकीकरण पर एक मोनोग्राफ के साथ-साथ एक स्वस्थ-सुन्दर और आगे चलकर नोबेल पुरस्कार जीतने वाली बेटी ईरीन भी विद्यमान थी। पर अब मारी का मन अपने शोध के लिए सर्वथा नवीन अनछुये विषय की खोज में अशांत था। इस तलाश में उन्हें रॉन्टजन द्वारा खोजी गई एक्स-रे किरण पर हेनरी बेकरेल द्वारा लिखे गये लेख से सहायता मिली। बेकरेल ने उल्लेख किया था कि एक दुर्लभ धातु यूरेनियम के लवणों से प्रकाश की अनुपस्थिति में भी स्वतः एक 'अज्ञात प्रकृति' की किरणें निकलती हैं। बेकरेल के इस उद्घाटन ने पियरे दंपत्ति को सम्मोहित कर लिया। उनके समक्ष प्रश्न था कि यूरेनियम यौगिकों से निरंतर रेडियेशन के रूप में निस्सृत होने वाली यह ऊर्जा कहां से आती हैं ? यही प्रश्न मारी क्यूरी के शोध का विषय बन गया।

डा. पियरी के स्कूल ऑफ फिजिक्स के एक स्टोर जैसे बेकार कमरे को ही प्रयोगशाला बनाकर मारी क्यूरी का शोधकार्य प्रारंभ हुआ। शीत, नमी, और तापमान के अन्तरों जैसी प्रतिकूलताओं के बीच शून्य सुविधाओं और अन्तहीन लगन के साथ मारी अपने कार्य में लग गईं। पहला कदम था यूरेनियम किरणों की आयनीकरण क्षमता का मापन। कुछ सप्ताहों के अन्दर ही परिणाम मिलने लगे। मारी अब आश्वस्त थी कि इन आश्चर्यजनक रेडियेशन की तीव्रता नमूनों में सम्माहित यूरेनियम के समानुपाती है और यह रेडियेशन (जिसका शुद्ध मापन संभव था) न तो यूरेनियम के संगुणन की रासायनिक स्थिति से प्रभावित होता था और न प्रकाश या तापमान जैसे बाह्य कारकों के कारण। यह विलक्षण और अबूझ रेडियेशन एक आणविक गुण था, इस परिणाम तक पहुंचने में मारी को देर न लगी। पर केवल यूरेनियम ही क्यों ? दूसरे रासायनिक तत्वों में भी तो ऐसी क्षमता का होना संभव था। अब मारी ने उन सभी ज्ञात रासायनिक पदार्थों में यह खोज शुरू की। शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि थोरियम नामक तत्व के यौगिक भी यूरेनियम की ही भांति और तीव्रता की स्वाभाविक किरणें उत्सर्जित करते हैं। मारी क्यूरी ने इस प्रक्रिया

को नाम दिया रेडियोएक्टिविटी या रेडियोसक्रियता और ऐसी क्षमता वाले थोरियम और यूरेनियम जैसे तत्वों को रेडियो एलीमेन्ट्स अथवा रेडियो तत्व कहा गया। अब मारी की उत्सुकता कई गुना बढ़ गई। पूर्णत: रेडियोसक्रियता विहीन खनिजों को छोड़कर, जो थोड़ी भी रेडियोसक्रियता की संभावना वाले खनिज थे उनकी जांच में स्वयं को झोंक दिया। अकस्मात् एक चमत्कारिक रहस्योद्घाटन हुआ। परीक्षित पदार्थ में पायी जाने वाली रेडियोसक्रियता उसमें उपस्थित यूरेनियम या थोरियम से प्राप्त रेडियोसक्रियता के अनुपात में बहुत अधिक थी। मारी को लगा यह परीक्षण की कोई भूल है। बीसों बार उस परीक्षण को सावधानीपूर्वक दोहराया गया। परिणाम हर बार वही थे। इसका केवल एक ही तर्कपूर्ण उत्तर हो सकता था कि उस खनिज में यूरेनियम और थोरियम से कई गुना अधिक रेडियोसक्रियता वाला कोई पदार्थ बहुत बड़ी मात्रा में निहित है। इनसे यह भी सुनिश्चित होता था कि वैज्ञानिकों को अब तक ज्ञात तत्वों के अतिरिक्त कोई पूर्णत: नया तत्व भी है। यह एक अत्यंत आकर्षक परिकल्पना थी।

12 अप्रैल 1898 को विज्ञान अकादमी की प्रकाशित होने वाली 'प्रोसीडिंग्स' में मारी क्यूरी ने पिचब्लैंड अयस्क में अत्यधिक रेडियोसक्रियता वाले एक सर्वथा नवीन तत्व के अस्तित्व की सूचना दी। किन्तु इसे विलग करके वैज्ञानिक जगत के सम्मुख प्रमाणित करना एक कठिन परीक्षा थी। उनके पति डा. पियरी क्यूरी अब आगे आये और क्रिस्टलों पर चल रहे अपने शोधकार्य को बीच में ही रोककर वह पूर्णत: मारी क्यूरी के शोध कार्य में सहयोगी हो गये। उनकी खोजों ने पाया कि रेडियोसक्रियता मुख्यत: पिचब्लैंड के दो विभिन्न रासायनिक भागों में विद्यमान है। मारी और पियरी के लिए यह दो नवीन तत्वों की पूर्व सूचना थी। जुलाई 1895 में मारी ने निश्चितता पूर्वक उनमें से एक की खोज की घोषणा कर दी और उसे अपनी मातृभूमि की याद में नाम दिया पोलोनियम। इसी वर्ष के दिसंबर माह तक उन्होंने पिंचब्लैंड अयस्क में एक अन्य रासायनिक तत्व के मिलने की भी घोषणा कर दी। उसके विषय में उन्होंने लिखा ''पहले बताये गये समीकरण हमें विश्वास दिलाते हें कि इस नये रेडियोसक्रिय पदार्थ में एक नया तत्व निहित है और हम उसे रेडियम का नाम देना चाहते हैं"।

क्यूरी दंपत्ति की इन नये तत्वों संबंधी घोषणाओं से विज्ञान जगत में

भारी हलचल मच गई। सदियों से मान्य सिद्धांतों, पदार्थ के संयोजन संबंधी मूलभूत विचारों पर ही प्रश्नचिन्ह लग रहा था। अत: भौतिकविदों और रसायन विज्ञानियों ने प्रमाणों की अनुपस्थिति में अणुभार जाने बिना उसे ऐसे ही मानने से इन्कार कर दिया।

अगला संघर्ष शुद्ध रेडियम और पोलोनियम को प्राप्त करने का था। कठिनाई यह थी कि अत्यधिक रेडियोसक्रिय उत्पादों में भी यह पदार्थ लगभग अदृश्य सूक्ष्म मात्राओं में ही विद्यमान था। इन नये तत्वों को विलग करने के लिए बहुत भारी मात्रा में कच्चे माल की जरूरत थी। पिंचब्लैंड अयस्क बहुत मंहगा था और उन्हें अपने कार्य के लिए इसकी कई टन मात्रा की आवश्यकता थीं। धुन की पक्की मारी को राह सूझ गई। उन्हं पता था कि यूरेनियम के निष्कर्षण के बाद भी पिंचब्लैंड अयस्क के अपशिष्ट में पोलोनियम और रेडियम की अति सूक्ष्म मात्रायें बची रह जाती हैं। यह अयस्क अपशिष्ट इतना सस्ता था कि अपनी मामूली बचत से क्यूरी दंपत्ति उसे मंगा सकते थे। अगले चार वर्षों तक उसी नाम मात्र की प्रयोगशाला में वे दोनों दिन-रात इन नये तत्वों की खोज में लीन रहे जो आगे चलकर मानवता के लिए एक महान वरदान सिद्ध होने वाली थी। अपने मनभाते शोधकार्य और रेडियम को प्राप्त कर सकने की संभावना ने कमर तोड़ मेहनत के बावजूद मारी को अतिशय आनन्द से भर दिया था। डा. पियरी क्यूरी रेडियम के गुणधर्म को निश्चित करने और उस तत्व को और अच्छी तरह समझने के प्रयास कर रहे थे और मारी उसके रासायनिक परिशोधन की दिशा में क्रियाशील थीं। रेडियम की उपस्थिति तो अपनी अभूतपूर्व रेडियोसक्रियता के कारण स्वत: सिद्ध थी, पर उसे अलग कर पाना एक दुष्कर कार्य सिद्ध हो रहा था। इन वर्षों में वह रेडियम द्वारा 'अभिप्रेरित रेडियोसक्रियता, रेडियोसक्रियता के प्रभाव' तथा इन 'किरणों द्वारा संवाहित विद्युत आवेश' पर अपने अवलोकनों को प्रकाशित करवा रहे थे। वर्ष 1990 में ''कांग्रेस ऑफ फिजिक्स'' में उन्होंने रेडियोएक्टिव पदार्थों पर सामान्य रिपोर्ट प्रकाशित कराई जिसने वैज्ञानिकों को नये सिरे से आकर्षित किया। इसी बीच एक युवा भौतिकविद् आन्द्रे देवियर्न द्वारा पोलोनियम और रेडियम के ही एक ''भाई एक्टिनियम की खोज कर ली गई। इस लंबी अवधि तक पिंचब्लैंड की टनों मात्रा को बड़े-बड़े कड़ाहों में उबालने के दुष्कर परिश्रम के बाद मारी क्यूरी

के पास अब रेडियम को विलग करने लायक अधिक सांद्र उत्पाद तैयार था। वह अत्यधिक रेडियोएक्टिव विलयन के परिशुद्धिकरण और प्रभावी क्रिस्टल के बहुत अधिक निकट आ पहुंची थी। पर इस कार्य के लिए उन्हें ताप-शीत और धूल से रहित एक सचमुच की प्रयोगशाला की आवश्यकता थी। सहायता कहीं नहीं थी। इन प्रतिभाशाली व्यक्तियों की तेजस्विता का अधिकांश समय नीरस व उबाऊ परिश्रम की बलि चढ़ रहा था। अंततः विजय कठिनाईयों की नहीं अपितु सच्ची लगन की हुई। रेडियम के अस्तित्व की घोषणा के लगभग पौने चार वर्षों के पश्चात् सन् 1902 में मादाम मारी क्यूरी लगभग एक डेसीग्राम शुद्ध रेडियम परिशोधित करने में सफल हो गईं। इस नये तत्व का अणुभार 225 निश्चित किया गया। विज्ञान जगत को अंत में एक जिद्दी महिला के अति मानवीय प्रयासों के सामने झुकना पड़ा। रेडियम के प्रति उनकी क्षमता बिल्कुल अपनी बेटी के प्रति स्नेह जैसी ही थी।

मूल तत्वों के केन्द्र में दो तरह के कण होते हैं, न्यूट्रॉन और प्रोटॉन। ये रेडियम में भी विद्यमान थे। रेडियम के केन्द्र में इनकी संख्या समान्य से अधिक होती है। इस संख्या की अधिकता के कारण ही उनमें अस्थिरता आ जाती है। ये केन्द्र से एक दो करके छिटकते रहते हैं। रेडियम से निकलने वाली ''अदृश्य किरण'' में तीन प्रकार की किरणें समाहित थीं। अल्फा, बीटा और गामा। अल्फा-हीलियम के परमाणु का केन्द्र, बीटा-तीव्र निगेटिव विद्युत का कण या इलेक्ट्रॉन और गामा साधारण प्रकाश से छोटी तरंगदैर्ध्य वाली। रेडियोसक्रियता के कारण रेडियम का हर परमाणु विकिरण के बाद एक दूसरे मूल तत्व में बदल जाता है। अब तक वैज्ञानिकों का विचार था कि मूल तत्व बदलते नहीं। पर रेडियम का परमाणु होते-होते लगभग दो हजार वर्षों में एक प्रकार का सीसा (लेड) बन जाता है।

इन सूचनाओं के प्रकाश में विज्ञान जगत अब धीरे-धीरे इस ''नवजात'' के आगामी महत्व और इसके औषधीय लाभों के प्रति आशान्वित होने लगा था। आगे चलकर इसी आविष्कार के सूत्रों के पकड़कर कैंसर का उपचार भी खोजा गया और परमाणुओं का विघटन करके परमाणु बम भी बनाये गये।

मारी और पियरे क्यूरी को इस महान आविष्कार के लिए मान्यता और पुरस्कार मिलना आरंभ हो गया था। इसी बीच 1903 के जून मास में मान्या

ने अपनी डॉक्टरेट की उपाधि भी प्राप्त कर ली थी। इसी वर्ष के अंत में उनकी ख्याति का चरम क्षण भी आ गया। 10 दिसंबर 1903 को उस वर्ष का भौतिक विज्ञान का ''नोबेल पुरस्कार'' आधा हेनरी बेकुरल और आधा क्यूरी दंपत्ति को सम्मिलित रूप से प्रदान करने की घोषणा की गई।

वे अपनी सफलता से संतुष्ट थे पर उससे जुड़ी महत्वाकांक्षा और घमंड उनके सरल मन को दूषित नहीं कर सके थे। इधर कई देश रेडियम की संभावनाओं को पहचान कर उसके बनाने की क्रियाविधि जानने के लिए अशांत हो उठे थे। अपनी आर्थिक कठिनाइयों और स्वयं की एक समुचित प्रयोगशाला के लोभ को भूलकर इन महान वैज्ञानिकों ने निष्काम योगियों जैसे वैराग्य के साथ इस विधि को सार्वजनिक करने में तनिक भी देर नहीं की। उनका विचार था कि यह ज्ञान उनकी घरेलू संपत्ति नहीं थी। यह तो जन कल्याण का एक उपस्कर था।

इन उपलब्धियों के फलस्वरूप पेरिस विश्वविद्यालय ने पियरी क्यूरी को भौतिक विज्ञान विभाग में एक पद देने का निश्चय किया जो विगत कई वर्षों के प्रयास के बाद भी अब तक उन्हें प्राप्त नहीं हो सका था। इधर 6 दिसंबर 1904 को मारी क्यूरी ने एक दूसरी बेटी ईव क्यूरी को जन्म दिया। रेडियम की खोज के बाद पूरे वर्ष तक वैज्ञानिक हलचलों से अंशतः क्षुब्ध और आगे की उदासीनता से भरी मारी क्यूरी शिशु के आगमन के बाद नई स्फूर्ति के साथ अपनी प्रयोगशाला में लौट आईं।

कुछ समय पश्चात् मारी क्यूरी भी पहली बार अधिकारिक रूप से डा. पियरी क्यूरी की प्रयोगशाला में मुख्य सहायक के पद पर नियुक्त हुई। यहां वे रेडियम द्वारा वित्सर्जित किरणों के आधार पर पूर्ण शुद्धता से उसकी मात्रा निर्धारण पर कार्य कर रहे थे। महीनों के प्रयासों के बाद अब धीरे-धीरे परिणाम निकट आने लग गये थे। पर क्रूर नियत ने 19 अप्रैले 1906 को एक मर्मान्तक दुर्घटना में डा. पियरी क्यूरी को इस संसार से उठा लिया। सड़क पर चलते हुए गाड़ी के पहियों के नीचे दबकर मृत्यु को प्राप्त होते समय भी संभवतः स्वयं में डूबे डा. पियरी क्यूरी का मस्तिष्क किसी शोध समस्या का हल ढूंढने में लीन था।

मारी आजीवन अपने पति, मित्र, सहयोगी, अधिकारी और प्रिय सहचर की मृत्यु के इस शोक से उबर नहीं पाईं। पर हिमालय जैसी दृढ़ता वाली उस

नारी ने बड़ी गंभीरता से उस शोक को अपने अंदर समेट लिया। उनहोंने पूरी निर्ममता के साथ स्वयं को डा. पियरी क्यूरी के अधूरे कार्यों को पूरा करने में समर्पित कर दिया। उनके समक्ष पेंशन का प्रस्ताव रखा गया पर उनके आत्मसम्मान और कार्यक्षमता को यह स्वीकार न था। अंततः विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान विभाग का पद जो उनके पति की मृत्यु के बाद खाली पड़ा था उन्हें सौंप दिया, **यद्यपि उनके नारी होने पर बहुत आपत्तियां की गईं। प्रथम बार किसी नारी को सॉरबॉन में यह सम्मान दिया गया था।** यहां वह पूरे विश्व में रेडियोसक्रियता का सर्वप्रथम और एकमात्र पाठ्यक्रम निर्देशित कर रही थीं। उनका शोधकार्य भी सहयोगी आन्द्रे देवियर्न के साथ सफलतापूर्वक आगे बढ़ रहा था। उन्होंने रेडियम के क्लोराइड के कुछ डेसीग्राम परिशुद्ध करके पुनः उसके अणुभार का मापन किया। देवियर्न के साथ उन्होंने पोलोनियम और उससे विसर्जित होने वाली किरणों का भी अध्ययन किया। अंततः स्वतंत्र रूप से मारी क्यूरी ने रेडियम द्वारा विसर्जित होने वाली किरणों के माप के आधार पर रेडियम को मापने की एक विधि ढूंढ निकाली। उन्होंने इस प्रविधि को व्यावहारिक स्तर तक पहुंचाया जहां सरलता से रेडियम का माप संभव हो सके।

इसके बाद वे रेडियम के सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय मानक की तैयारी में लग गईं। इसी समय उन्होंने 'रेडियो तत्वों' का वर्गीकरण' और 'रेडियो सक्रिय नियतांकों की सारणी' का प्रकाशन भी करवाया। 'वर्क्स ऑफ पियरी क्यूरी' (1908) और 'ट्रीटिस ऑन रेडियोएक्टिविटी' (1910) का प्रकाशन भी हुआ।

वर्ष 1911 में 'स्वीडिश एकेडेमी ऑफ साइंसेज' ने मारी क्यूरी को अपने पति की मृत्यु के बाद भी अबाध गति से विज्ञान की सेवा के लिए रसायन विज्ञान का नोबेल पुरस्कार दिया। अभी तक यह विश्व का सर्वोच्च सम्मान कभी किसी को (वह भी एक महिला को) दुबारा

नहीं मिला था। उनके इस कार्यभार से दबे नीरस जीवन की एक बड़ी उपलब्धि थी। मारी क्यूरी ने विज्ञान की अनन्य सेविका और पति की सच्ची सहचरी के रूप में उनके मृत्योपरांत भी उनका यह अधूरा सपना पूरा किया।

1915 में महायुद्ध छिड़ने पर यह नई प्रयोगशाला 4 वर्षों तक बंद पड़ी रही। मानवता की उपासिका डा. मारी क्यूरी ने अस्पतालों में एक्स-रे मशीन लगवाने के लिए अथक प्रयत्न किये। उसी के फलस्वरूप दो सौ अस्पतालों में एक्स-रे मशीनें लग सकीं तथा बीस सचल एक्स-रे वाहन तैयार कर लिये गये। युद्ध की समाप्ति पर मारी ने अपनी मातृभूमि वारसा में भी एक रेडियम संस्थान स्थापित करने का लक्ष्य निश्चित किया और अपने प्रशंसकों के सहयोग में सफल भी हुईं। इसके पश्चात् रेडियम संबंधी अपने समस्त ज्ञान को उन्होंने एक पुस्तकाकार रूप दिया और नाम रखा रेडियोएक्टिविटी (यानी रेडियोसक्रियता)।

अत्यधिक श्रम के भार से थकी उस दुर्बल स्वास्थ्य वाली महिला ने कभी अपने आराम के विषय में सोचा ही नहीं। पर प्रकृति तो भूलना नहीं जानती। मारी के रक्त कणों को धीरे-धीरे रेडियम ही नष्ट कर रहा था। वह रेडियम जिसे उन्होंने स्वयं जन्म दिया था। उसके दुष्प्रभावों से अति रुग्ण मारी क्यूरी वर्षों के तापसी जीवन के पश्चात् 1934 में दिनांक 4 जुलाई को चिरनिद्रा में लीन हो गईं। संसार की इस महानतम वैज्ञानिक ने एक सच्ची कर्मठ योद्धा और एक अतिमानवीय कुशाग्रता वाली महिला के रूप में अपना संपूर्ण जीवन केवल वैज्ञानिक लोकमंगल के कार्यों को समर्पित कर दिया और अमर हो गईं।

(साभार, विज्ञान प्रगति, फरवरी 2007)

❐❐

जीन विज्ञान की बेताज मलिका बारबरा मैक्लिंटॉक

नरसिंह दयाल

20वीं सदी के आरंभ में ग्रिगोर मेंडल द्वारा 1865 में प्रतिपादित आनुवंशिकता के नियमों की दुबारा खोज हुई थी। जीव विज्ञान के इतिहास में यह एक बहुत बड़ी घटना थी। इसने एक नये जीव विज्ञान आनुवंशिकी या जीन विज्ञान को जन्म दिया था। फिर थोमस हंट मौर्गन ने आनुवंशिकता के गुणसुत्रीय सिद्धांत की स्थापना कर इस विज्ञान को भौतिक आधार प्रदान किया। इसके बाद जीन विज्ञान ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा और प्रगतिपथ पर ऐसी सरपट दौड़ लगाई कि 1959 तक वह इसके आण्विक मोड़ तक पहुंच गया। इस दौरान वह पूर्णत: वयस्क और परिपक्व हो गया था। **जीन विज्ञान के परिपक्वता प्रदान करने में जिन गिने-चुने विज्ञानियों ने अहम् भूमिका निभाई है उनमें बारबरा मैक्लिंटॉक अग्रणी हैं।** वे 20वीं सदी की महानतम् जीन विज्ञानियों में एक हैं। विज्ञान के इतिहास में सर्वाधिक विवादास्पद महिला विज्ञानी होने के बावजूद वे जीन विज्ञान की बेताज मलिका हैं।

बार्बी मैक्लिंटॉक का जन्म 16 जून 1902 की कनेक्टिकट, यू.एस.ए. के हार्टलैंड नामक एक छोटे से शहर में हुआ था। यह एक दिचलस्प संयोग है कि मेंडल के नियमों की दुबारा खोज भी इसी वर्ष हुई थी। बार्बी के पिता थोमस हेनरी मैक्लिंटॉक पेशे से एक चिकित्सक थे और मां एक सामान्य घरेलू महिला। डा. मैक्लिंटॉक अपने पेशे से बहुत संतुष्ट नहीं थे और हमेशा आर्थिक दबाव में रहते थे। मैक्लिंटॉक दंपत्ति की चार संतानें थीं - तीन पुत्रियां और एक पुत्र। बार्बी का स्थान तीसरा था। उनसे दो बहनें बड़ी थीं और भाई

छोटा। भाई के जन्म के समय वह मात्र दो वर्ष की थीं। चार संतानों का लालन-पालन परिवार के लिए मुश्किल हो रहा था। अत: पुत्र के जन्म के बाद माता-पिता ने बार्बी को उसके मामा-मामी के पास देखभाल के लिए भेज दिया। वे न्यूयार्क के पास ब्रुक्लिन के फ्लैटबुश में रहने लगीं। वह वहां स्कूल जाने की उम्र तक रही। हां, बीच-बीच में माता-पिता से मिलने हार्टलैंड आती रहती थीं। माता-पिता का लाड़-प्यार उसे बहुत नहीं मिल पाया। उसका बचपन उपेक्षित ही रहा। बार्बी के जेहन में प्रकृति प्रेम की नींव फ्लैटबुश के ग्रामीण परिवेश में ही पड़ी।

1908 में मैक्लिंटॉक परिवार भी फ्लैटबुश आकर बस गया। बार्बी के पिता को यहीं एक कंपनी में नौकरी मिल गई। अब बार्बी अपने परिवार के साथ रहने लगी। उसे इसी साल एक स्थानीय स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा गया। उसका प्रकृति प्रेम यहां भी बना रहा।

1908 में बार्बी ने इरास्मस उच्च विद्यालय की अंतिम परीक्षा पास की। वह एक मेधावी छात्रा थी और परीक्षा में उसे अच्छे अंक मिले थे। वह आगे की पढ़ाई करना चाहती थी लेकिन उसके पिता चाहते थे कि वह कॉलेज की पढ़ाई न करके कोई छोटी-मोटी नौकरी कर ले। बार्बी ने एक साल तक नौकरी भी की। लेकिन वह माता-पिता को अपनी आगे की पढ़ाई के लिए मनाती रही और निजी अध्ययन भी करती रही। वह एक निडर और हिम्मतवाली लड़की थी और स्वभाव से कुछ जिद्दी भी। वह लड़कों के साथ बेसबॉल भी खेलती थी। अमरीकी भाषा में ऐसी लड़की को 'टॉमबॉय' कहा जाता है। शायद उसके अल्हड़ स्वभाव के कारण उसके पिता आशंकित थे कि पता नहीं, पढ़ाई में यह लड़की कैसा कर पायेगी। खैर, अंतत: उसने अपने पिता को राजी कर ही लिया। 1919 में उसने इथाक के कृषि कॉलेज, जो कॉरनेल विश्वविद्यालय के अंतर्गत था, में दाखिला ले लिया। कॉलेज के शुरूआती दिनों वह सामान्य अमेरिकी छात्रा की तरह ही थी। वह डेटिंग पर जाती, कॉलेज के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में टेनोल बैंजो बजाती और नाचती-गाती। वह नये छात्र-छात्राओं के बीच काफी लोकप्रिय थी और उनकी अध्यक्षा भी चुनी गई थी। उस समय विश्वविद्यालयों में युवा महिलाओं का एक संगठन हुआ करता था। बारबरा को इस संगठन की सदस्यता के लिए निमंत्रण दिया गया, लेकिन जब उसे मालूम हुआ कि ड्यूटी महिलाएं इसकी सदस्या नहीं

हो सकती तो उसने निमंत्रण को ठुकरा दिया। सामाजिक कुरीतियों से उसे नफरत थी, वह विरोधी स्वभाव की युवती थी। अपनी पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ वह विश्वविद्यालय के पाठ्योत्तर क्रिया-कलापों में भी बढ़-चढ़कर भाग लेती।

20वीं सदी का दूसरा और तीसरा दशक जीन विज्ञान का विकासकाल था। आनुवांशिकता के गुणसूत्रीय सिद्धांत की स्थापना हो चुकी थी। जीनों के संलग्नता समूहों (लिंकेज ग्रुप) की पहचान में उनके निवास स्थानों का निर्धारण किया जा रहा था तथा पेड़-पौधों और जंतुओं की प्रजातियों में गुणसूत्रों का अध्ययन किया जा रहा था। उस समय फलमक्खी (ड्रोसोफिला) जीन विज्ञानियों के लिए सर्वाधिक आकर्षक शोध वस्तु थी। विश्वविद्यालयों में जीन विज्ञान के पाठ्यक्रम लागू होने लगे थे। मेंडेल-मौर्गनवाद की ठोस नींव पर जीन विज्ञान के सुंदर भविष्य की योजना बनायी जा रही थी।

बारबरा मैक्लिंटॉक भी सीनियर कोर्स में इस नये जीन विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करना चाहती थी। इस कोर्स की पढ़ाई विश्वविद्यालय के पौध प्रजनन विभाग में होती थी, **लेकिन लड़कियों के लिए इस कोर्स को पढ़ने की मनाही थी**। उन्होंने जूनियर कोर्स में गौण पाठ्यक्रम के रूप में जीन विज्ञान और जंतु विज्ञान ले रखा था। वह बहुत निराश थी। लेकिन एक दिन प्रसिद्ध कोशिका विज्ञानी प्रोफेसर जे. बी. हचिंसन, जो कॉलेज के वनस्पति विज्ञान विभाग में जीन विज्ञान का एक कोर्स पढ़ाते थे, ने बारबरा को अपनी कक्षा में जीन विज्ञान का कोर्स करने को कहा। प्रोफेसर ने फोन करके उसे बुलाया था। बारबरा की तो जैसे बिन मांगे मुराद ही पुरी हो गई थी। वह तुरंत इस कोर्स में शामिल हो गई। बाद में मैक्लिंटॉक ने लिखा भी है-''फोन पर उस बुलाहट ने मेरा भविष्य तय कर दिया और इसके बाद मैं हमेशा के लिए जीन विज्ञान की होकर रह गई।''

विश्वविद्यालय में स्नातक की शिक्षा ग्रहण करने के दौरान ही बारबरा मैक्लिंटॉक ने जॉन बेलिंग की कोशिका वैज्ञानिक तकनीक (गुणसुत्रों को अध्ययन करने की विधियों) को परिमार्जित कर आसान बना दिया था। उन्होंने 1925 में बी.एस.एस., 1925 में एम.एस.सी. और 1927 में पी.एच. डी. की डिग्री प्राप्त की। एम.एस.सी. में उन्होंने धान्य फसलों में कोशिका

वैज्ञानिक अध्ययनों की समीक्षा पर शोध प्रबंध प्रस्तुत किया था। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि एम.एस.सी. की डिग्री उन्हें जीन विज्ञान में न मिलकर वनस्पति विज्ञान में मिली थी। 1925 में उन्होंने मक्का (जिया मेज) में एक ऐसे पौधे की खोज की जिसमें गुणसुत्रों की संख्या 30 थी। सामान्यत: मक्का में गुणसूत्रों की संख्या 20 होती है। अत: यह एक 'ट्रिप्लॉयड' मक्का ही उनके अग्रिम शोधकार्यों का आधार बना। उन्होंने मक्का में ट्रिप्लॉयड क्यों और उनकी संततियों के गहन कोशिका का वैज्ञानिक अध्ययन कर पीएच.डी. की डिग्री के लिए शोध प्रबंध प्रस्तुत किया था।

1925 में ही एम.एस.सी. की डिग्री प्राप्त करने के बाद वे विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग में शिक्षिका के पद पर नियुक्त कर ली गई। उस समय वहां के कृषि कॉलेज में युवा विज्ञानियों की एक टोली रॉलिंगस इमर्सन के नेतृत्व में मक्का की आनुवंशिकी पर शोधकार्य कर रही थी। बारबरा भी प्रोफेसर इमर्सन की अनुसंधान टोली में शामिल हो गई। ट्रिप्लॉयड मक्का ने उनमें इस फसल में वैज्ञानिक अनुसंधान करने की ज्वाला भड़का दी थी।

1925-1930 के दौरान उन्होंने मक्का में महत्वपूर्ण शोधकार्य किया। इसके 'ट्रिप्लॉयड' उपभेदों को सामान्य 'डिप्लॉयड' उपभेदों से संकरण करा कर वे इसके कई 'ट्राइजोमिक' वंशक्रमों को उत्पन्न करने में सफल रहीं। 'ट्राइजोमिक पौधों में गुणसुत्रों की संख्या से एक अधिक होती है यानी 2n+1। यह अतिरिक्त गुणसूत्र मक्का के 10 गुणसुत्रों मे से कोई भी हो सकता है। इस प्रकार मक्का के सभी 10 गुणसुत्रों की पहचान कर विभिन्न गुणसूत्रों में विशिष्ट जीनों का पता लगाया जा सकता है। फलमक्खी में तब तक संलग्नता समूहों (लिंकेज ग्रुप) का पता लगाया जा चुका था और उसके चारो गुणसूत्रों में जीनों के स्थान निर्धारित किए जा रहे थे। मैक्लिंटॉक भी मक्का में ऐसा ही करना चाहती थी। उन्हें इसमें सफलता भी मिली। उन्होंने मक्का में न केवल दसों गुणसुत्रों के पहचान लिया था बल्कि उनके 'ट्राइजोमिक' वंशक्रम भी प्राप्त कर लिये थे। इसके अतिरिक्त उन्हें एक ऐसा भी वंशक्रम मिला जिसके पौधों के कुछ हिस्सों की अदला-बदली हो जाती हैं। इस प्रकार के गुणसूत्रीय परिवर्तन को गुणसूत्रीय विनिमय (क्रोमोजोमल इंटरचेंज) या स्थानांतरण (ट्रांसलोकेशन) कहा जाता है। गुणसूत्रीय विनिमय के अध्ययन से उन्हें चार

संलग्नता समूहों की पहचान करने में सफलता मिली। 1929-1931 के दौरान मक्का पर उनके 9 महत्वपूर्ण शोध निबंध प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके थे और उनकी पहचान जीन विज्ञान के आकाश में एक उदीयमान सितारे के रूप में चमकने लगी थी।

मेक्लिंटॉक की जीन पिपासा बड़ी प्रबल थी। शोध करने की तो जैसे उन पर धुन सवार थी। विश्वविद्यालय में प्रयोग के लिए उपलब्ध जमीन पर वे स्वयं पौधे उगातीं, गर्मियों में पौधों में संभावित उत्परिवर्तनों को दर्ज करतीं और फसल काटने के बाद प्रयोगशाला में उन पौधों में कोशिका विभाजन और गुणसूत्रों का अध्ययन करतीं। वे कहा भी करती थीं - **मैं नहीं सोचती कि किसी पौधे की पूरी कहानी मैं जानती हूं अगर मैंने उसे पूरी तरह नहीं देखा हो। अत: मैं खेत में सभी पौधों को जानती हूं। मैं उन्हें बहुत नजदीक से जानती हूं और उनके बारे में जानकर मुझे सुखद अनुभूति होती है।'**

पिछली सदी के तीसरे दशक में अमेरिका में आर्थिक मंदी का दौर चल रहा था। विश्वविद्यालयों में स्थायी नौकरियों की कमी होती जा रही थी। महिलाओं के लिए तो स्थायी पदों के अवसर और कम थे। इतनी ख्याति अर्जित करने के बाद भी मैक्लिंटॉक को कॉरनेल विश्वविद्यालय में स्थायी शिक्षक के पद को प्राप्त करने से वंचित रखा गया। लेकिन शोध कार्यों के लिए उन्हें प्रतिष्ठित संस्थानों द्वारा बराबर शोधवृति मिलती रहीं। कॉरेनेल विश्वविद्यालय में रहते हुए कुछ समय के लिए वे जर्मनी भी गईं जहां कर्ट स्टर्न के साथ उन्हें शोध करना था। लेकिन उन्हें वहां का माहौल अच्छा नहीं लगा। उस समय पूरे यूरोप, विशेषकर जर्मनी, में राजनैतिक तनाव शिखर पर था। स्टर्न स्वयं अमेरिका में बसने चले गए। अत: रिचर्ड गोल्डस्मिट के साथ कुछ महीनों तक काम करने के बाद वे कॉरनेल लौट गईं।

लेविस स्टैंडलर बारबरा मैक्लिंटॉक के शोध कार्यों से पूर्ण परिचित थे और वे उनकी असाधारण क्षमता के कायल हो चुके थे। वे कोलंबिया स्थित मिसौरी विश्वविद्यालय में एक्स-किरणों द्वारा मक्का में तरह-तरह के उत्परिवर्ती उत्पन्न कर रहे थे। वे चाहते थे कि बारबरा उनके शोध कार्यों में शामिल हो। उन्होंने मैक्लिंटॉक को मिसौरी विश्वविद्यालय के अंतर्गत एक महिला कॉलेज

के वनस्पति विज्ञान में सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए बुलाया। उन्होंने ही बारबरा को सर्वप्रथम कृत्रिम उत्परिवर्तन के लिए एक्स-रे की उपयोगिता से परिचय करवाया था। स्टैंडलर के साथ मिसौरी में उन्होंने कई महत्वपूर्ण शोध कार्य किये। उन्होंने दर्शाया कि विकिरणित पौधों में गुणसुत्रों का विखंडन होता है और इसी से उत्परिवर्तन होता है। उन्हें कुछ उत्परिवर्तनों में वलय गुणसूत्र (रिंग क्रोमोजोम) भी मिले।

मिसौरी विश्वविद्यालय में भी बारबरा मैक्लिंटॉक बमुश्किल 4-5 वर्षों तक ही रह पाई। उन्हें लगा कि यहां उनका कोई भविष्य नहीं है। वे यहां एक महिला कॉलेज में अस्थायी सहायक प्रोफेसर और यह पद भी प्रोफेसर स्टैंडलर की उपस्थिति पर निर्भर करता था जो अनिश्चित था। फिर यहां उनका मुख्य कार्य शिक्षण ही था और खाली समय में ही वे शोध कार्य कर पाती थीं। प्रशासनिक व्यवधान भी बहुत थे। वे कई वैयक्तिक और व्यावसायिक चुनौतियों से भी जूझ रही थीं। उनकी स्वछंदता, मौलिकता और दक्षता भी अधिकांश सहकर्मियों को अभित्रस्त करती थीं। **उन्हें लगा कि एक महिला होने के कारण उनके शोध कार्य को समुचित मान्यता नहीं दी जा रही और उनकी उपेक्षा की जा रही है।** उन्हें संकाय की बैठकों में बुलाया नहीं जाता था और दूसरी संस्थाओं में उपलब्ध पदों के बारे में भी बताया नहीं जाता था। अंतत: 1940 में उन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। इस संबंध में उन्होंने अपने पूर्व सहकर्मी चार्ल्स बर्नहम को एक पत्र लिखा - मैंने निश्चय कर लिया हे कि मुझे कहीं और काम ढूंढना होगा। जहां तक मैं समझती हूं मेरे लिए यहां कुछ भी नहीं रखा है। यहां मैं मात्र 3000 डॉलर मासिक वेतनभोगी एक सहायक प्रोफेसर हूं और शायद यही मेरी सीमा है। उन्हें विश्वास हो गया था कि उनका यह पद कभी भी स्थायी नहीं होगा।

1941 की गर्मियों में वे कोलंबिया गईं जहां उनके पुराने सहयोगी और मित्र मरकस रोड्स प्रोफेसर थे। रोड्स ने उनसे कोल्ड स्प्रिंग हरबर प्रयोगशाला में शामिल होने का आग्रह किया जिसे मैक्लिंटॉक ने तुरंत स्वीकर कर लिया। 1941 के दिसम्बर माह में प्रोफेसर मिलिस्लाव डेमेरेक ने कोल्ड स्प्रिंग हारबर में उन्हें एक वरीय शोधकर्त्ता के पद पर नियुक्त किया। यह प्रतिष्ठित प्रयोगशाला लौंग आइलैंड, वाशिंगटन के कारनेगी संस्थान के अंतर्गत कार्य करती हैं। इस प्रयोगशाला में एक साल काम करने के बाद ही उनकी

नियुक्ति पूर्णकालिक शोधकर्ता के पद पर हो गई और वे यहां आजीवन शोध रत रहीं।

कोल्ड स्प्रिंग हारबर में मैक्लिंटॉक के वे समय शोध की दृष्टि से बहुत ही उत्पादक रहे। यहां उन्होंने मिसौरी के गुणसूत्रों के विखंडन-संयोजन-सेतु चक्र' या 'बीएफबी' चक्र पर आरंभ किये गये शोध कार्यों का विस्तार किया और जीन मानचित्रण के लिए एक वैकल्पिक उपकरण के रूप में इसका इस्तेमाल किया। उन्होंने पाया कि विकिरणित परागकणों द्वारा विकसित मक्का की कई किस्मों के गुणसूत्रों के विखंडन का पैटर्न बारंबार घटित होता है। उन्होंने इस 'बीएफबी' चक्र का उपयोग उत्परिवर्तनशील जीनों के उत्पादन में किया। ये जीन पौधों के विकास के दौरान स्वत: बंद या खुल जाते हैं। इस प्रकार के कुछ नये उत्परिवर्तनों की कोशिका में ही उन्हें 'गतिशील आनुवंशिक तत्वों' का सुराग मिला।

1944 में जॉर्ज बिड्ल, जिन्हें गुलाबी फफूंद न्युरोस्पोरा में एक जीन - एक एंजाइम के सिद्धांत के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया, के आग्रह पर बारबरा मैक्लिंटॉक ने इस फफूंद के गुणसूत्रों की संरचना और संख्या का अध्ययन किया। इसी वर्ष गर्मियों में उन्होंने मक्का के दानों (केरनेल) में रंगीन धब्बों के विन्यास और इनकी अस्थिर आनुवंशिकता का योजनाबद्ध अध्ययन आरंभ कर दिया था। उन्होंने दो नये और परस्पर प्रभावित करने वाले जीनस्थलों (जीन लेकस) की पहचान की और उन्हें 'विघटक' या 'डिसोसिएटर' (Ds) और 'उत्प्रेरक या एक्टिवेटर (Ac) का नाम दिया। Ac की उपस्थिति में Ds न केवल गुणसूत्रों को तोड़ता था, बल्कि पड़ोसी जीनों को भी भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभावित करता था। फिर 1948 में उन्होंने खोज की कि 'विघटक' Ds और 'उत्प्रेरक' Ac नामधारी दोनों जीन गुणसूत्रों में अपना-अपना स्थान बदलते रहते हैं। यह एक बड़ी विचित्र खोज थी और गुणसुत्रों में जीनस्थलों की अटलता या अपरिवर्तनीयता के संबंध में मेडेंल-मौर्गनवाद की मान्यताओं के विरूद्ध था। मैक्लिंटॉक ने नियंत्रित संकर मक्के की कई पीढ़ियों तक उसके दानों में रंगीन धब्बों के बदलते पैटर्न और दोनों जीनों के स्थानांतरण प्रभाव का अध्ययन किया अेर उनके आपसी संबंधों का विस्तृत विश्लेषण किया।

1948-1950 में उन्होंने 'संचालक तत्वों (रेगुलेटरी एलिमेंट्स) के सिद्धांत का विकास किया। इस सिद्धांत के आलोक में उन्होंने जटिल बहुकोशीय प्राणियों की कोशिकाओं में वर्तमान समरूप जीनोमों में जीन संचालन की कार्य विधि की व्याख्या की थी। उन्होंने इस अवधारणा को चुनौती दी थी कि जीनोम पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थैतिक होता है जबकि बार्बी उसे गत्यात्मक (डायनमिक) बता रही थी। गतिशील आनुवंशिक तत्वों और नियंत्रक तत्वों से संबंधित उनका शोध कार्य 1950 में राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, यू.एस.ए. की पत्रिका में प्रकाशित हुआ। शोध निबंध का शीर्षक था-मक्का में उत्परिवर्तन स्थलों की उत्पति और प्रकृति। फिर 1950 में कोल्ड स्प्रिंग हारबर की वार्षिक संगोष्ठी में इस विषय पर शोध पत्र प्रस्तुत किया।

लेकिन संचालक तत्वों और जीन संचालन पर उनके विचार वैज्ञानिक समुदाय को रास नहीं आए। उनके विचार समकालीन जीव विज्ञानियों के लिए अनबूझ पहेली जैसे थे। कुछ लोगों को तो उनका शोध पत्र बकवास लगा, कई लोगों ने इसका जोरदार विरोध भी किया। लेकिन मैक्लिंटॉक हतोत्साहित नहीं हुईं और संचालक तत्वों पर अपने शोध कार्य को अकेली ही आगे बढ़ाती रहीं। वह विश्वास करती थीं कि यदि तुम्हारी पुकार सुनकर कोई नहीं आये तो अकेला ही चलो' और अपनी राह खुद बनाओ। प्रायोगिक प्रमाणों और अकाट्य तर्कों के साथ वे घूम-घूमकर विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों में इस विषय पर व्याख्यान देतीं और विज्ञानियों के मन से अपने कार्य के प्रति उपजे संदेह को दूर करने की कोशिश करतीं। उन्होंने Ac-Ds के समान एक अन्य संचालक तत्व, जिसे उन्होंने 'उन्मूलक उत्परिवर्तक (सप्रेसर म्युटेटर, संक्षेप में Spm) नाम दिया, की भी खोज की थीं। लेकिन उन्हें लगा कि मुख्य धारा के जीन विज्ञानी उनसे दूर हो रहें हैं। अत: उन्होंने

1953 के बाद संचालक तत्वों पर अपने शोध कार्यों का प्रकाशन रोक दिया। अपने इस निर्णय के बारे में उन्होंने 1973 में लिखा था : 'इन वर्षों के दौरान मैंने यह पाया है कि दूसरे व्यक्ति की मौन पूर्व धारणा को दूर करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हैं जबकि कुछ खास अनुभवों के द्वारा मैंने उन्हें इसके बारे में बताया है। 1950 के दौरान मेरे लिए बड़ा ही दुखद अनुभव था जीन विद्यार्थियों को ही मनवाना कि जीन के कार्यों को नियंत्रित होना ही है और वह नियंत्रित था भी। आज भी मेरे लिए उन पूर्वाग्रह ग्रसित विचारों को मान लेना उतना ही दुखद है जिसे मक्का में नियंत्रक तत्वों की प्रकृति और उनके कार्य करने के तरीकों के बारे में बहुत से लोगों ने समझ रखा है। वैज्ञानिक परिवर्तन के लिए सही समय का इंतजार तो करना ही होगा।

1957 में बारबरा मैक्लिंटॉक को राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान और रॉकफेलर फाउंडेशन द्वारा दक्षिण अमेरिका में मक्का की किस्मों पर शोध के लिए आर्थिक अनुदान दिया गया। दक्षिण अमेरिका इस फसल का उत्पत्ति केन्द्र है और यहां इसकी अनेक प्रजातियां और असंख्य किस्में पाई जाती हैं। कई सहयोगियों के साथ मिलकर उन्होंने यहां की मक्का का गुणसूत्रीय, रूपात्मक और विकासात्मक अध्ययन किया जो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं कोल्ड स्प्रिंग हारबर में वे 1967 में औपचारिक रूप से सेवानिवृत हुईं लेकिन सेवानिवृति के बाद भी वे स्नातक छात्रों और सहकर्मियों के साथ सेवामुक्त प्रोफेसर के रूप में शोध कार्य करती रहीं।

1953 में जेम्स वाटसन और फ्रांसिस क्रिक द्वारा आनुवंशिक द्रव्य डीएनए की डबल हेलिक्स संरचना का मॉडल प्रस्तुत करने के बाद जीन विज्ञान पूर्णत: आण्विक हो गया था और गणित, भौतिकी, रसायनशास्त्र आदि के क्षेत्र में विज्ञानियों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। जीन विज्ञान में दिन-दूनी, रात-चौगुनी प्रगति हो रही थीं। मैक्लिंटॉक का इतना महत्वपूर्ण शोध कार्य तब प्रकाश में आया जब 1961 में दो फ्रांसीसी जीन विज्ञानियों, फ्रांसुआ ज़ैकब और ज़ाक मोनो का 'लैक' 'ऑपेरॉन' का आनुवंशिक संचालन पर एक शोध निबंध प्रोटीन संश्लेषण में आनुवंशिक संचालन की कार्यविधि शीर्षक से प्रसिद्ध शोध प्रत्रिका 'नेचर' में प्रकाशित हुआ। बारबरा मैक्लिंटॉक' ने तुरंत 'अमेरिकन नैचुरैलिस्ट' पत्रिका में एक लेख लिखा। इसमें उन्होंने 'लैक ऑपरेशन' की तुलना अपने 'मक्के में नियंत्रक तत्वों' से की थी और

दोनों में समानता दर्शायी थी। लेकिन फिर भी किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया।

1965-75 के दौरान आण्विक जीन विज्ञान में सार्थक नई तकनीकों का विकास हुआ। इसकी मदद से सूक्ष्मजीवों, विशेषकर जीवाणुओं और यीस्ट में बहुत से ऐसे जीनों तथा डी एन ए के टुकड़ों की खोज हुई जो जीनोम में अपना स्थान परिवर्तन करते थे। दूसरे शब्दों में, वे जीनोम में जहां-तहां आते-जाते रहते थे और पड़ोसी जीनों को निर्देश देते थे कि उन्हें क्या करना है। आण्विक जीव विज्ञानियों ने ऐसे जीनों को 'ट्रांसपोज़ोन' का नाम दिया। आम भाषा में 'ट्रांसपोजोन' को कूदने-फांदने वाला 'जम्पिंग जीन' कहा गया। इसके बाद तो इन यायावर जीनों की खोज का सिलसिला चल पड़ा। शीघ्र ही यह भी पता चल गया कि जीनों का स्थानांतरण, 'ट्रांसपोजिशन', जीवजगत में लगभग व्यापक संवृति है और इसका कृषि और चिकित्सा के क्षेत्र से महत्वपूर्ण संबंध हैं। **मैक्लिंटॉक के आनुवंशिक नियंत्रण के सिद्धांत, जिसे पहले पूरी तरह से नहीं माना गया और जो अब तक लगभग अस्वीकृत हो चुका था, का इस प्रकार पुनर्जन्म हुआ। देर से ही सही, लेकिन विज्ञान जगत ने उनके महत्वपूर्ण योगदान को समझा और उन्हें मान्यता दी।**

मैक्लिंटॉक के सिद्धांतों की सत्यता की पुष्टि के लिए Ac-Ds जीनों को क्लोन किया गया। अध्ययनों से पता चला कि Ac दूसरी श्रेणी का एक संपूर्ण ट्रांसपोजोन है। जीनोम में गति के लिए यह 'ट्रांसपोजेज' नामक एक क्रियाशील एंजाइम उत्पन्न करता है। Ds के 'ट्रांसपोज़ेज के अन्य स्रोत के बिना नहीं चल सकता और यह उसे Ac से प्राप्त होता है। मैक्लिंटॉक का Spm भी एक ट्रांसपोज़ोन निकला। शोध कार्यों से यह भी पता चला कि ट्रांसपोजोन तब तक

अपना स्थान नहीं बदलते जब तक कोशिका को विकिरण या गुणसूत्रों के विखंडन-संयोजन सेतु चक्र द्वारा कोई तनाव नहीं झेलना पड़ता। तनाव के दौरान इनकी सक्रियता क्रमविकास में आनुवंशिक परिवर्तन के लिए स्रोत का कार्य करते हैं। मैक्लिंटॉक ने इसे बहुत पहले ही समझ लिया था। देर से मिली मान्यता पर बड़ा भावुक होकर उन्होंने कहा था - **जब आपको यह पता हो कि आप सही हैं तो आप इसकी परवाह नहीं करते कि कोई क्या सोच या कह रहा है। सच्चाई तो कुड़ेदान से भी एक दिन बाहर निकल आयेगी।**

सम्मान, अनुदान, पारितोषिक और पुरस्कार बारबरा मैक्लिंटॉक के कदम बराबर चूमते रहे : 1944 में राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की सदस्यता, 1945 में अमेरिका की जेनेटिक सोसायटी की अध्यक्षता, 1971 में राष्ट्रपति रिर्चड निक्सन द्वारा राष्ट्रीय विज्ञान पदक, 1983 में मैकार्थर संस्थान का अनुदान, टी. एच. मौर्गन मेडल, लास्कर पुरस्कार, वोल्फ पुरस्कार, 1982 में लुइस ग्रौस हारविच पुरस्कार, 1983 में चिकित्सा के लिए नोबेल पुरस्कार आदि-आदि।

1983 में वे कार्यिकी या चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में अकेली नोबेल पुरस्कार विजेता थीं। नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने के बाद मैक्लिंटॉक के लिए तो जैसे दुनिया ही बदल गई थी। उनके कार्यों और उनकी प्रशंसा में कसीदे काढ़े जाने लगे। उनकी जीवनी पर पुस्तकें लिखी जाने लगी। वैज्ञानिक समुदाय अपनी गलतियां मानने लगा। नोबेल पुरस्कार प्राप्ति की सूचना उन्हें सुबह-सुबह, जब वह सैर के लिए निकली थीं, संवाददाताओं से मिली थी। एक संवाददाता द्वारा यह पूछे जाने पर कि इस पुरस्कार राशि का उपयोग वे किस प्रकार करेंगी, उन्होंने मायूस होकर कहा था - 'अब तो बहुत देर हो चुकी है। मैं बहुत बूढ़ी हो गई हूँ। पहले यह मिलता तो जरूर कुछ करती। फिर भी, सोचती हूँ कि इससे अब क्या किया जा सकता है।'

उनके सम्मान में 2005 में अमेरिका के डाक विभाग द्वारा एक डाक टिकट जारी किया गया फिर 1986 में राष्ट्रीय महिला कीर्तिकक्ष में उन्हें अधिष्ठापित किया गया तथा कोरनेल विश्वविद्यालय में एक भवन का नाम 'मैक्लिंटॉक भवन' रखा गया है। कोल्ड स्प्रिंग हारबर के निकट हंटिगन नामक स्थान में 90 वर्ष की उम्र में 2 सितम्बर 1992 में उनकी मृत्यु हो गई। वे अविवाहिता और अकेली थी।

बारबरा मैक्लिंटॉक ने 1950 में ही प्रकृति के गत्यात्मक और पारस्परिक सक्रिय रूप का दर्शन कर लिया था। वे जीनोम को कोशिका का एक अतिसंवदेनशील अंग मानती थीं। उनकी मृत्यु के बाद विभिन्न जीनोम परियोजनाओं के अन्तर्गत हुए शोध कार्यों से यह स्पष्ट होने लगा है कि वे अपने 'सनकी' विचारों में बिल्कुल सही थीं यदि वे 100 साल जीवित रहतीं तो शायद उन्हें दूसरी बार नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया जाता और इस बार यह होता जीनोम की कार्य पद्धति में अर्न्तदृष्टि के लिए।

जीन विज्ञान के इतिहास में बारबरा मैक्लिंटॉक को ऐसे व्यक्ति के रूप में याद किया जायेगा जिसने स्थापित परंपरा को कई मोर्चों पर तोड़ने में सफलता पाई थीं। एक जीन विज्ञानी के रूप में उन्होंने विकास प्रक्रिया में जीन की भूमिका को औरों से बहुत पहले समझ लिया था एक स्त्री के रूप मे उंन्होंने परंपरागत लिंग बोध की अवधारणा द्वारा नियंत्रित होने से इंकार कर दिया था और एक विज्ञानी के रूप में उन्होंने बुद्धिसंगत ज्ञान रचना में अपनी शोध वस्तु से अंतरंग संबंध, जीव के लिए अनुभूति की महत्ता को समझा और इस संबंध को दृढ़ता से जीवन भर बनाये रखा था।

(साभार, विज्ञान प्रगति, अगस्त 2008)

संपर्क सूत्र : प्रो० नरसिंह दयाल,
नवकुंज, एच 1/70 हरमू हाउसिंग कॉलोनी,
राँची (झारखण्ड)-834 002

❐❐

कल्पना के पथ पर
सुनीता विलियम्स

काली शंकर

भारतीय मूल की प्रथम महिला अंतरिक्ष यात्री कल्पना चावला के बाद भारतीय मूल की द्वितीय महिला अंतरिक्ष यात्री सुनीता विलियम्स 10 दिसम्बर 2006 को सार्वत्रिक (युनिवर्सल) समय 1 बजकर 47 मिनट और 35 सेकंड पर केनेडी स्पेस सेंटर के प्रमोचन पैड 39 बी से स्पेस शटल डिस्कवरी द्वारा अपनी अंतरिक्ष उड़ान में गईं ।

परिचय :

सुनीता विलियम्स का जन्म 19 सितम्बर 1965 के अमरीका के ओहियो प्रांत के यूक्लिड स्थान पर हुआ। पर वे मैसाचूसैट्स के नीधम को ही अपना घर मानती हैं। उनकी शादी माइकल जे. विलियम्स से हुई। सुनीता के पिता डॉ० दीपक पान्ड्या एक न्यूरोलॉजिस्ट हैं जो 1958 में अहमदाबाद से अमरीका चले गये थे। उनकी मां श्रीमती बोनी पान्ड्या स्लोवेनियम मूल की महिला हैं। सुनीता के माता-पिता मैसाचूसैट्स के फैल्मथ स्थान में रहते हैं। सुनीता ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा (1983) में नीधम हाई स्कूल, नीधम से प्राप्त की। 1987 में सुनीता ने अमरीकी नेवल एकेडमी से फिजिकल साइंस में बी एस की डिग्री तथा 1995 में फ्लोरिडा इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से इंजीनियिरिंग मैनेजमेंट में मास्टर ऑफ साइंस की डिग्री प्राप्त की। वे अनेक संस्थाओं जैसे सोसायटी ऑफ एक्सपेरिमेंटल टेस्ट पायलट, सोसायटी ऑफ फ्लाइट टेस्ट इंजीनियर्स तथा अमेरिकन हेलीकॉप्टर एसोसियेशन से सम्बद्ध है। उन्हें अनेक सम्मानों यथा : नेवी कमेंन्डेशन मेडल, नेवी एंड मैरीन कार्प्स एचीवमेंट मेडल, ह्यूमैनिटेरियन सर्विस मेडल और अन्य पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है।

अनुभव :

सुनीता विलियम्स ने मई 1987 में अमरीकी नेवल एकेडमी से अमरीकी नेवी में कमीशन प्राप्त किया। नेवल सिस्टम कमांड में 6 महीने की अस्थायी नियुक्ति के बाद सुनीता को बेसिक ड्राइविंग आफिसर पद प्रदान किया गया पर उन्होंने नेवल एवियेशन ट्रेनिंग कमांड में रिपोर्ट किया। जुलाई 1989 में उन्हें नेवल एवियेटर का पद प्रदान किया गया। अमरीकी नेवल टेस्ट पायलट स्कूल में चयन हो जाने के बाद जनवरी 1995 में उनकी ट्रेनिंग प्रारंभ हुई। दिसम्बर 1993 में रोटेरी विंग एयरक्राफ्ट टेस्ट डायरेक्टरेट में उनकी ड्युटी लगाई गई। दिसम्ब्र 1995 में वे नेवल टेस्ट पायलट स्कूल में वापस इंस्ट्रक्टर के तौर पर गई। सुनीता विलियम्स को 30 विभिन्न प्रकार के वायुयानों को उड़ानें का 2,770 घंटे का अनुभव है।

नासा का अनुभव :

नासा द्वारा सुनीता का चयन 1998 में किया गया तथा अगस्त 1998 में उन्होंने अंतरिक्ष यात्री उम्मीदवार प्रशिक्षण स्कूल में रिपोर्ट किया। इस प्रशिक्षण में उन्हें अनेक जगहों पर जाना पड़ा, अनेक वैज्ञानिक और तकनीकों विषयों की जानकारी दी गई तथा स्पेस शटल और अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन अल्फा तथा इनके तंत्रों और उपतंत्रों के विषय में बताया गया। अपने प्रशिक्षण के दौरान सुनीता विलियम्स को मास्को में रूसी अंतरिक्ष संस्था के साथ भी काम करना पड़ा जहां उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन के रूसी योगदान के तंत्रों और उपतंत्रों की जानकारी दी गई। इस प्रशिक्षण में उनके साथ अल्फा अंतरिक्ष स्टेशन के स्थायी अंतरिक्ष यात्री दल-1 के सदस्य भी थे। स्थायी अंतरिक्ष यात्री दल की अल्फा स्टेशन के वापसी के बाद सुनीता विलियम्स ने रोबोटिक शाखा में अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन की रोबोटिक भुजा पर भी कार्य किया। नीमो-2 परियोजना के सदस्य के रूप में सुनीता विलियम्स 'एक्वैरियम हैबिटैट'' में 9 दिन पानी में रहीं। 10 दिसम्बर 2006 को प्रमोचित स्पेस शटल की उड़ान एस टी एस-116 के द्वारा स्थायी अंतरिक्ष यात्री दलों-14 और 15 के सदस्य के रूप में वे अल्फा अंतरिक्ष स्टेशन पहुंच गई हैं।

सुनीता विलियम्स की अंतरिक्ष उड़ान से गौरवान्वित माता-पिता :

सुनीता विलियम्स की अंतरिक्ष उड़ान से उनके माता-पिता और रिश्तेदार काफी खुशी महसूस कर रहे थे। सुनीता की मां बोनी पान्ड्या ने अंतरिक्ष उड़ान के बाद कहा, 'सुनीता की अगली हार्दिक इच्छा मंगल ग्रह पर जाने की है।'' गौरवान्वित बोनी पान्ड्या ने कहा कि चार वर्ष पहले पहले अंतरिक्ष उड़ान से वापस आते हुए भारतीय मूल की प्रथम महिला अंतरिक्ष यात्री कल्पना चावला की मृत्यु हो गई थी तथा इस महान महिला अंतरिक्ष यात्री कल्पना चावला से मेरी बेटी को काफी प्रेरणा मिली। अपनी बेटी के कर्त्तव्यनिष्ठापूर्ण गुणों से प्रभावित बोनी पान्ड्या आगे कहती हैं, ''उसने (सुनीता विलियम्स ने) अपना ध्यान पढ़ाई में बड़ी गंभीरता से केन्द्रित कर रखा था तथा साथ-साथ तैराकी भी करती थी, सॉकर खेलती थी, पियानो बजाती थी तथा हाई स्कूल और कॉलेज में वह स्विमिंग कैप्टन भी थी। इसलिए मैं सोचती हूँ कि उसकी बहुमुखी प्रतिभा ने उसे जीवन के इस मुकाम पर पहुंचाया है। वह दूसरी पीढ़ी को भारतीय अमरीकी हैं तथा पिछले 8 वर्षों से वह नासा के साथ काम कर रही हैं।'' सुनीता के पिता दीपक पान्ड्या भी काफी उत्साहित हैं तथा सुनीता के बचपन की एक घटना बताते हैं। उस समय सुनीता 6 वर्ष की रही होगी जबकि पान्ड्या परिवार समुद्र के किनारे घूमने के लिए गया हुआ था। समुद्र के किनारे बालू से सुनीता ने एक छोटा सा दुर्ग बनाया और उस पर हिन्दी में राम लिखा।

सुनीता को बधाई संदेश

भारत के अहमदाबाद और जूनागढ़ से तथा अन्य शहरों से भी अंतरिक्ष में जाने को लेकर उन्हें अनेक बधाई संदेश प्राप्त हुए। डॉ० दीपक पान्ड्या कहते हैं, ''मेरे अनेक रिश्तेदार भारत में टेलीफोन पर सुनीता को बधाई भेज रहे हैं तथा उन्हें सुनीता पर गर्व है।'' सुनीता की अंतरिक्ष उड़ान में उपस्थिति को लेकर अनेक पारिवारिक सदस्य भारत से नासा के जॉन्सन स्पेस सेंटर आये थे। सुनीता के माता-पिता, दोस्तों और रिश्तेदारों ने उसकी अंतरिक्ष यात्रा पर अनेकों भेंटों की योजना बनाई थी।

सुनीता विलियम्स का फ्लाइट पूर्व साक्षात्कार :

यह साक्षात्कार नासा द्वारा लिया गया था। उसके कुछ अंश यहां पर

प्रस्तुत हैं :-

प्रश्न : विश्व में सैकड़ों हजारों पायलट और वैज्ञानिक हैं लेकिन उनमें केवल 100 अमरीकी यात्री हैं। आपको अंतरिक्ष यात्री बनने के लिए किसने प्रेरित किया और उन लोगों की श्रेणी में जाने को प्रोत्साहित किया जो अंतरिक्ष में उड़ते है ?

सुनीता विलियम्स : अच्छा प्रश्न है। मैं समझती हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति अंतरिक्ष यात्री बनना चाहता है। जब मैं 5 वर्ष की थी तो मैनें नील आर्मस्ट्रांग को चन्द्र सतह पर चलते देखा था तथा मैंने सोचा था कि मैं भी एसी ही बनूंगी। वास्तव में मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि वैसा ही मेरे जीवन में भी होगा। लेकिन यह सब होता तब साकार प्रतीत हुआ जब मैं मेरीलैण्ड के टेस्ट पायलट स्कूल में गई। मैं एक नेवी और हेलीकॉप्टर पायलट हूँ। अपनी फील्ड ट्रिपों के दौरान एक बार मुझे जॉन्सन स्पेस सेन्टर आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरे साथ मेरे साथी हेलीकॉप्टर पायलट पिछली सीटों में तथा बाकी नव जेट पायलट आगे की सीटों पर बैठे हुए थे। हम सभी लोग वहां पर स्पेस शटल के प्रथम कमांडर जॉन यंग, जो स्पेस शटल और चंद्रमा पर जाने के विषय पर भाषण दे रहे थे, को उत्सुकता से सुन रहे थे। मुझे याद है कि उन्होंने चंद्रमा पर लैंडर उतारने के संदभ में हेलीकॉप्टर फ्लाइंग की भी बात कही थी। यह बात मेरे मस्तिष्क में एक अमिट छाप छोड़ गई कि हेलीकॉप्टर पायटल भी अंतरिक्ष यात्री बन सकते हैं।

प्रश्न : आप मैसाचुसैट्स में बड़ी हुईं। नीथम और मैसाचुसैट्स के विषय में कुछ बताएं ?

सुनीता विलियम्स : यह एक छोटा कस्बा है लेकिन इतना छोटा भी नहीं है। मेरे हाई स्कूल ग्रेजुएट कक्षा में लगभग 500 बच्चे थे। यह एक बड़ा खेल-कूद वाला कस्बा है। मैं एक स्विमर के रूप में बड़ी हुई। मैं स्कूल के पहले और बाद में स्विमिंग में काफी समय गुजारा करती थी।

प्रश्न : क्या आप बता सकती हैं कि उस स्थान ने तथा वहां के लोगों ने आपको वर्तमान स्थिति में पहुंचाने में आपकी किस प्रकार मदद की?

सुनीता विलियम्स : जहां मैं बड़ी हुई वह बोस्टन के काफी पास है। मैसाचुसैट्स के अधिकांश लोग जल्दी-जल्दी बोलते हें तथा थोड़ा हाजिर-जवाब भी होते हैं। मैं समझती हूँ कि थोड़ा बहुत मैं भी उस तरह की हूं। लेकिन सच कहूं तो जहां पर मैं तैरती थी वह हार्वर्ड था और इसलिए हम लोगों नें ने काफी समय कैम्ब्रिज क्षेत्र में गुजारा। मेरे पिता जी एक डॉक्टर हैं तथा उन्होंने हार्वर्ड मेडिकल स्कूल और बोस्टन विश्वविद्यालय मेडिकल स्कूल में पढ़ाया है तथा बोस्टन क्षेत्र के कुछ अस्पतालों में काम भी किया है। मैं समझती हूँ कि वहां बड़े होने के साथ-साथ मैंने यह महसूस किया कि जैसे आपके आस-पास सभी और आप स्वयं कालेज जा रहे हों। बड़े होने के लिए यह स्थान बहुत अच्छा है क्योंकि वहां आस-पास अनेक कॉलेज, विश्वविद्यालय और अस्पताल हैं तथा ये चीजें उस क्षेत्र के प्रति आपकी दिलचस्पी को बढ़ा देती है।

प्रश्न : अब हम आपके कैरियर और शिक्षा की बात करते हैं ?

सुनीता विलियम्स : मैंने हाई स्कूल से ग्रेजुएशन किया। मैं अव्वल दर्जे की तो नहीं थी पर ठीक थी। उसके बाद मेरा भाई नेवल एकेडेमी में गया। मेरी सबसे बड़ी चिन्ता यह थी कि मेरे लम्बे-लम्बे बाल थे जैसे कि अभी भी हैं लेकिन अगर मुझे इन्हें काटना पड़ेगा तो मुझे अच्छा नहीं लगे। इसलिए मुझे नहीं लगता था कि मैं इस (भाई के) स्कूल में जा पाऊंगी। इसलिए मैंने कुछ अन्य स्कूलों में दाखिले के लिए आवेदन किया जिनमें कुछ बोस्टन में थे तथा कुछ न्यूयार्क में। मेरी दो आखिरी पसंद कोलम्बिया और नेवल एकेडमी थीं। कोलम्बिया से मैं थोड़ा डर रही थी क्योंकि यह न्यूयार्क शहर के डाउनटाउन में था इसलिए आखिर में मैंने नेवल एकेडमी को चुना। वहां पर आप अपने ग्रेड प्वाइंट के आधार पर अपना कैरियर चुन सकते हैं। मैं गोताखोर (ड्राइवर) बनना चाहती थी। लेकिन अपने ग्रेड के कारण मैं ऐसा नहीं कर सकी। इसीलिए अन्ततः मैं एक पायलट बन गई।

लेकिन मेरी यही सीमा नहीं थी। हर एक की भांति मैं भी जेट पायलट बनना चाहती थी तथा यह वह समय था जब महिलाएं लड़ाकू वायुयान नहीं उड़ाती थी। मुझे मेरी पहली पसंद नहीं मिल पाई और मुझे दूसरी पसंद से संतोष करना पड़ा तथा यह पसंद हेलीकॉप्टर पायलट की थी। मैंने हेलीकॉप्टर उड़ाये और हेलीकॉप्टर उड़ाना मुझे अच्छा लगा। मैंने अपने इस कैरियर के दौरान ईस्ट कोस्ट, मेडिटिरेनियन और पर्शियन गल्फ में डिप्लॉयमेंट ऑपरेशन किये।

प्रश्न : अर्थात् आप हेलीकॉप्टर उड़ाती हैं तथा किसी समय आप जान्सन स्पेस सेन्टर आई। बतायें कि वहां से आप अन्तरिक्ष यात्री कैसे बनीं ?

सुनीता विलियम्स : जब मैं हेलीकॉप्टर फ्लीट में थी तो वहां एक चीज के प्रति मेरी दिलचस्पी बढ़ी जिसे मैं वास्तव में करना चाहती थी। जब वायुयान वहां पर मेन्टीनेन्स के लिए आते थे तो उसके बाद उनकी टेस्ट फ्लाइट की जाती थी जो आवश्यक और अनिवार्य थी। विशिष्ट वायुयान के लिए तथा टेस्ट पायलट बनने के लिए कुछ खास योग्यताओं की आवश्यकता होती थी। यह काम मैं दिलचस्पी से करना चाहती थी और इसी दिलचस्पी ने मुझे टेस्ट पायलट स्कूल की ओर अग्रसर किया जहां पर आप केवल विशिष्ट फ्लाइट की ही जांच नहीं करते या अपनी फ्लीट का ही वायुयान नहीं उड़ाते बल्कि अन्य प्रकार के वायुयान और हेलीकॉप्टर भी उड़ाते हैं जो फ्लीट भविष्य में उड़ने वाली है।

प्रश्न : यह मिशन (एस टी एस-116) आपका प्रथम फ्लाइट मिशन है। आपकी क्या प्रतिक्रिया थी जब आपको यह बताया गया कि आप अन्तरिक्ष में जा रही हैं ?

उत्तर : मैं खुशी से फूली नहीं समाई। उस समय चार्ली प्रोकोर्ट अंतरिक्ष यात्री कार्यालय के प्रमुख थे जब उन्होंने मुझे यह समाचार दिया। वे शायद इस बात का इंतजार ही कर रहे थे कि यह समाचार सुनकर मैं खुशी से कूदूंगी और उछलूंगी।

प्रश्न : 'अन्तरिक्ष में फ्लाई करना' अंतरिक्ष यात्री की ड्यूटी के साथ-साथ एक जोखिम भरा कार्य भी है। यह कौन सी चीज है जिसे आप अंतरिक्ष उड़ान में फायदे की चीज समझती हैं ?

सुनीता विलियम्स : अंतरिक्ष में जाने वाले लोगों से पृथ्वी के लोगों का जुड़ जाना अथवा अपने को रिलेट कर लेना एक बड़ा आकर्षण है। अंतरिक्ष यात्री कार्यालय में विभिन्न देशों और विभिन्न संस्कृतियों के अनेक लोग हैं और प्रत्येक बार जब कोई अंतरिक्ष में जाता है तो उसका प्रतिनिधित्व अनेक लोग करते हैं और उसकी मिसाल देते हुए उनके मुख से अनायास निकल पड़ता है कि काश मैं भी अंतरिक्ष में जाता। इस प्रकार लाखों संभावनाएँ होती है। उदाहरणार्थ मैं आधी भारतीय हूँ तथा मुझे पूरा विश्वास है कि भारतीय लोगों का एक बड़ा समूह भारतीय मूल के दूसरे व्यक्ति के अंतरिक्ष में जाते हुए देखने की प्रतीक्षा कर रहा है। इस प्रकार इस अनुभूति से बड़ा सुख मिलता है। प्रत्येक अंतरिक्ष फ्लायर अपनों से संबंधित एक ग्रुप से जुड़ जाता है जो उसमें (अंतरिक्ष फ्लायर में) दिलचस्पी रखते हैं।

प्रश्न : आप इस उड़ान में स्थायी अंतरिक्ष यात्री दल-14 और 15 की फ्लाइट इंजीनियर हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन अल्फा में जा रहा है। संक्षिप्त में आप अपनी उड़ान के लक्ष्य और उत्तरदायित्व बताएं ?

सुनीता विलियम्स : मैं स्थायी अंतरिक्ष यात्री दल-14 के अंतरिक्ष यात्री के रूप में स्पेस शटल की उड़ान एस टी एस-116 से अंतरिक्ष में जाऊंगी। इस समय अवधि में अंतरिक्ष स्टेशन में पी3/पी6 सौर एरे के अंत में एक पी 5 ट्रस का स्थापन होगा। इनके साथ-साथ पावर तंत्र में कुछ संशोधन किये जायेंगे। इसके लिए मैं रोबोटिक दल की सदस्य के रूप में काम करूंगी। मुझे वहां पर स्पेस वाक भी करनी होगी। स्पेस शटल के अंतरिक्ष यात्रियों और अंतरिक्ष स्टेशन में पहले से मौजूद कुछ अंतरिक्ष यात्रियों के चले जाने के बाद स्टेशन में मैं और अंतरिक्ष यात्री मिशा टूरिज्म रहेंगे। एस टी एस-116 उड़ान के पृथ्वी पर चले जाने के बाद हम दोनों मिलकर स्टेशन का तापीय रीकन्फिगुरेशन करेंगे। सब कुछ ठीक ठाक चलता है तो स्पेस शटल की एक और उड़ान एस ओ एस-117 पृथ्वी से से अल्फा स्टेशन में आयेंगी। इस उड़ान में एस3/एस4 सौर एरे आयेंगी तथा हम लोग उन्हें भी अल्फा स्टेशन में लगायेंगे। इसके लिए मैं रोबोटिक दल की सदस्य रहूंगी। इसके अलावा मैं अनेक वैज्ञानिक परीक्षणों तथा कम्प्यूटर रीकन्फिगुरेशन में भी हिस्सा लूंगी। स्थायी अंतरिक्ष यात्री दल-14 के सदस्यों के चले जाने के

बाद स्थायी अंतरिक्ष यात्री दल-15 के सदस्य आयेंगे तथा उस समय में भी उस दल की सदस्य बन जाऊंगी। उस समय एक अन्य रोबोटिक ऑपरेशन के रूप में अल्फा स्टेशन के अन्य अवयव पी एम ए-3 अवयव का पुन:स्थापन होगा जिसमें मैं हिस्सा लूंगी। यह भावी नोड-2 अवयव के लिए एक तैयारी होंगी। उसके बाद मैं अपना बाकी समय स्थायी अंतरिक्ष यात्री दल-15 के सदस्यों के साथ गुजारूंगी। उसके बाद स्पेस शटल की उड़ान एस टी एस-118 पृथ्वी से आयेंगी। इस प्रकार अल्फा स्टेशन के निर्माण में स्पेस वाकों और रोबोटिक आपॅरेशनों में मैं मदद करूंगी।

प्रश्न : अल्फा अंतरिक्ष स्टेशन में आप 6 महीने तक रहेंगी। यहां पर उपर्युक्त कार्यों के अलावा और क्या-क्या करने के लिए होगा ?

सुनीता विलियम्स : मैं समझती हूँ कि अंतरिक्ष में मेरा कार्यक्रम काफी व्यस्त रहेगा। लेकिन इसमें काफी मजा भी आयेगा तथा इसके लिए मैं अपने को काफी भाग्यशाली भी मानती हूँ। अरे हां, एक चीज तो मैं बताना भूल ही गई कि जब स्थायी अंतरिक्ष यात्री दल-15 के सदस्य अल्फा अंतरिक्ष स्टेशन में आयेंगे तो मुझे मिलाकर उस दल में एक अमरीकी और दो रूसी अंतरिक्ष यात्री होंगे।

प्रश्न : आपकी अंतरिक्ष ट्रैवेल की योजना सामान्य से थोड़ा हटकर है। आप अंतरिक्ष में स्पेस शटल से जा रहे हैं। जहां आकर आप यूरोपीय अंतरिक्ष संस्था के अंतरिक्ष यात्री थॉमस रीटर को रिप्लेस करेंगी। क्या आप ऐसा सोचती हैं कि वहां पर आपको आपके दो सहयोगी ऐसे मिलेंगे जो पहले से ही उस काम में लगे हुए हैं, जो आप वहां जाकर करेंगी तथा इससे आपका फायदा होगा ?

सुनीता विलियम्स : नि:संदेह इस मामले में मैं भाग्यशाली हूं तथा जो भी मुझे समझ में नहीं आयेगा, वे मुझे समझायेंगे। मेरी यह पहली अंतरिक्ष यात्रा होगी तथा वे दोनों अनुभवी अंतरिक्ष फ्लायर हैं।

(साभार, विज्ञान प्रगति, फरवरी 2007)

❑❑

जैसी माँ वैसी बेटी

पूर्णिमा सिन्हा व **सुपर्णा सिन्हा**

महिला वैज्ञानिकों की बात करें तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी बहुत ही गिने-चुने नाम ध्यान में आते हैं। हिन्दुस्तान के सन्दर्भ में तो अक्सर एकाध नाम भी नहीं सूझता। इसका एक कारण तो स्पष्ट है कि सामाजिक असमानताओं और स्टीरियोटाइप्स के चलते बहुत कम महिलाएँ उच्चतर शिक्षा हासिल कर पाती हैं - वह भी आमतौर पर विभिन्न तरह के बहुत-से संघर्षों से गुजरते हुए।

उतना ही महत्वपूर्ण दूसरा कारण यह है कि जो महिलाएँ विज्ञान में शोधरत हैं उनके बारे में आज भी लोगों को बहुत ही कम पढ़ने को मिलता है। इस कमी को पाटने की तरफ एक कदम उठाया है इण्डियन एकेडमी ऑफ साइंसेज ने। उनकी 'वीमेन इन साइंस' पहल के तहत 'लीलावतीज डॉटर्स' पुस्तक कुछ महीने पहले प्रकाशित हुई जिसमें हिन्दुस्तान की सौ महिला वैज्ञानिकों के लेख हैं - उनके काम, विचार व संघर्षों के बारे में।

इस पुस्तक के कुछ महत्वपुर्ण लेख आप तक पहुँचाने की कड़ी में हम सुपुर्णा सिन्हा के इस लेख से शुरूआत कर रहे हैं। अगले कुछ अंकों में यह प्रयास जारी रहेगा।

विज्ञान को अपने जीवन का ध्येय और वृति बनाने को मुझे प्रेरित करने वाले किरदारों में निश्चित ही मेरी माँ - पूर्णिमा सिन्हा (विवाहपूर्व सेनगुप्त) की भूमिका सबसे अहम रही हैं। माँ एक भौतिकशास्त्री थीं। कोलकाता विश्वविद्यालय से भौतिकी में पीएच.डी. करने वाली पहली महिला। उन्हें प्रो. एस.एन. बोस के साथ काम करने का विशेष सौभाग्य मिला - वही एस. एन. बोस जिन्होंने बोस स्टेटिस्टिक्स का आविष्कार किया और जो बंगाल के पुनर्जागरण की उपज थी। दरअसल, उन्होंने ही इस बात पर जोर दिया था कि माँ अपनी एक्स-रे मशीन खुद बनाएँ, बिल्कुल नए सिरे से। इसके लिए माँ ने

दूसरे विश्व युद्ध के बाद कोलकाता के फुटपाथों पर कबाड़ के रूप में बिकने वाले सैन्य उपकरणों का उपयोग किया था।

अपनी पीएच.डी. के बाद 1963-64 में माँ अमरीका के स्टैनफोर्ड विश्विविद्यालय में जैव-भौतिकीय के अन्तर्गत 'जीवन की उत्पत्ति' विषय पर काम करने लगीं। यह काम जीवविज्ञान और भौतिकी, दोनों से सम्बन्धित था और इसके तहत उन्होंने मिट्टी (क्ले) और डीएनए के डबल-हेलिक्स से सम्बन्धित ढाँचों का अध्ययन किया। बाद में उन्होंने जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया तथा जे. सी. बोस इंस्टिट्युट में काम किया। इसके बाद बीस वर्षों तक वे सेन्ट्रल ग्लास एण्ड सिरेमिक रिसर्च इंस्ट्टियूट में सिरेमिक के रंगों की भौतिकी पर काम करती रहीं। अब वे सेवा निवृत्त हैं, और विज्ञान के लोकव्यापीकरण के लिए श्रोर्डिजर की 'माइण्ड एण्ड मैटर' तथा कामेनेत्सकी की 'अनरैवेलिंग डीएनए : दि मोस्ट इम्पॉर्टेन्ट मॉलेक्यूल ऑफ लाइफ' जैसी किताबों का बांग्ला में अनुवाद करती रहती हैं।

चलिए, मैं समय की घड़ी में पीछे की ओर चल देती हूँ और उस पारिवारिक माहौल को देखने की कोशिश करती हूँ जहाँ मेरी माँ पली-बढ़ी। उनके पिता - डॉ० नरेशचन्द्र सेनगुप्ता - एक सम्वैधानिक वकील तथा प्रगतिशील लेखक थे जिन्होंने बांग्ला व अँग्रेजी में 65 से ऊपर किताबें तथा कई लेख लिखे थे। इनमें से कुछ औरतों की शिक्षा के मुद्दे पर भी थे। उनके कई उपन्यास नारी-मुक्ति के मुद्दे के इर्द-गिर्द रचे गए। उनके परिवार पर उनका बहुत जबरदस्त प्रभाव था।

उनकी चार बेटियां - मेरी माँ जो अब 80 साल की हैं और मेरी तीन मासियाँ - ने भौतिकी, अर्थशास्त्र, गणित और रसायन शास्त्र का अध्ययन किया। औरतों की उच्च शिक्षा की ओर ध्यान देने का यह जोरदार सिलसिला इनके बाद की पीढ़ी तक जारी रहा। ननिहाल के तरफ की मेरी बहनों में से कई आज गणित, आण्विक जीवविज्ञान, सांख्यिकी, चिकित्सा विज्ञान आदि का अध्ययन कर रही वैज्ञानिक हैं। नतीजतन, आज मैं यह महसूस करती हूँ कि मैं जिस तरह के दृष्टिकोण के साथ बड़ी हुई, वह उस आम दृष्टिकोण से बहुत अलग है जिसके साथ अधिकतर लोग बड़े होते हैं। दुनिया के प्रति मेरे नजरिए को इन सब औरतों ने आकार दिया है और मैं इस विश्वास के साथ बड़ी हुई कि ऐसी औरतें ही सामान्य हैं, अपवाद नहीं।

अगर वर्तमान में लौटकर मेरे उस माता-पिता और दो बहनों वाले छोटे से परिवार को देखें जिसमें मैं पली-बढ़ी हूँ, तो खुद को बहुत खुशकिस्मत पाती हूँ। मेरे नृशास्त्री व कलाकार पिता और मेरी माँ ने, जो उतनी ही एक कलाकार थीं जितनी कि भौतिकशास्त्री, मेरी बहन सुकन्या (जो आज इंडियन स्टैटिस्टिकल इंस्टिट्यूट, बैंगलुरू में कार्यरत एक भौतिकशास्त्री हैं) और मेरे लिए घर में एक ऐसा माहौल तैयार किया था जहाँ सीखना, समझना और सृजन करना जीवन के अभिन्न अंग थे। घर में मिलने आने वालों में शामिल थे कई कवि, नाटककार, सत्यजीत राय जैसे फिल्म निर्माता, चित्रकार, निर्मल बोस जैसे वैज्ञानिक, जो मेरे पिता के मार्गदर्शक थे और वैज्ञानिक सत्येन बोस, जो मेरी माँ के गुरू थे। बचपन के दिनों में ललित कलाओं में मेरी उतनी ही रूचि थी जितनी की गणित में। घर पर भौतिकी की बेहतरीन किताबों का एक बड़ा-सा जखीरा हमारे पास मौजूद था जिन्हें मेरी माँ पढ़ती थी। परन्तु भौतिकी को, जो तर्क और प्राकृतिक दुनिया के साथ सम्बन्धों का एक अनोखा मिश्रण है, एक विषय के रूप में समझने और सराहने में मुझे कुछ और वक्त लगा। विश्वविद्यालय की पढ़ाई से पहले, कोलकाता के साउथ पॉइंट हाई स्कूल में हमारे भौतिकी के शिक्षक अंजन दासगुप्ता ने हममें से बहुतों को इस विषय की खुबसूरती से परिचित कराया।

भौतिकी में स्नातक की पढ़ाई पूरी कर मैं देश छोड़कर एम.एस.-पीएच. डी. करने सायराक्यूज युनिवर्सिटी, अमरीका गई। वहाँ अपनी पढ़ाई के अन्तिम दौर में आगे अध्ययन करने की दृष्टि से सैद्धान्तिक संघनित पदार्थ भौतिकी (थियोरेटिकल कंडेस्ड मैटर फिजिक्स) को प्रयोगों के साथ ज्यादा जुड़ाव के कारण उच्च ऊर्जा भौतिकी व गुरुत्वाकर्षण की तुलना में मैंने अधिक आकर्षक पाया। मेरे इस चुनाव में मेरे शिक्षक रंजन भट्टाचार्य व मेरे मामा श्यामल सेनगुप्ता के निश्चित प्रभाव भी थे। उसी समय मारिया क्रिसटीन मारकेटी नाम की एक सैद्धांतिक संघनित पदार्थ भौतिक विज्ञानी सायराक्यूज विश्वविद्यालय से जुड़ी और अपनी पीएच.डी. के लिए शोध-गाईड के रूप में स्वाभाविक ही मैंने उन्हें चुना।

पीएचडी के आखिरी सालों तक भौतिकी में काम करना मेरे लिए बहुत सकारात्मक अनुभव रहा। मेरे सभी शिक्षक और मेरे सहपाठी भी, चाहे वे स्त्री हो या पुरुष, सबने मुझे प्रोत्साहन दिया और अक्सर भौतिकी में काम करने की मेरी शैली और सवालों को सुलझाने के मेरे नजरिए को सराहा।

बाद के वर्षों में मैंने धीरे-धीरे विज्ञान के अध्ययन में और एक वैज्ञानिक तथा एक माँ के रूप में अपनी पहचानों के बीच ताल बनाने में क्रिस्टीना के साहस, जिद और प्रेरणा को सराहना सीखा। इन चीजों के बारे में मैं तब तक नहीं समझ पाई थी जब तक कि मैंने खुद लिंग आधारित भेद-भाव का सामना नहीं किया। मेरे पीएच.डी. के वर्षों से मेरी प्रेरणा के एक प्रमुख स्रोत थे रफैल सॉरकिन, जिनके साथ मैंने क्वांटम डिफ्युजन पर एक पर्चे पर काम किया था। भौतिकी और उससे आगे भी उनके पैने दिमाग और खुली सोच ने मुझे बहुत प्रभावित किया है।

सायराकयूज़ यूनिवर्सिटी में पीएच.डी. के दौरान ही मैं जोसेफ सैम्युएल से मिली जो एक थियोरेटिकल भौतिकविज्ञानी थे और जिससे मैंने बाद में शादी की। पीएच.डी. के बाद मुझे काम के लिए यूरोप, अमरीका, टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, मुम्बई और इण्डियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, बैंगलुरू के प्रस्ताव मिले थे। मैंने इंण्डियन इंस्टिट्युट ऑफ साइंस, बैंगलुरू में पोस्ट-डॉक फैलो के रूप में काम करने का चुनाव किया क्योंकि यहाँ के भौतिकी विभाग में चल रहा शोध का काम मेरी रूचियों के करीब था, और मैं अपने पति के साथ भी होना चाहती थी। मेरे पति और मुझे जोड़ने वाली सबसे महत्वपूर्ण कड़ियों में भौतिकी भी शामिल है। 1996 में जन्मी हमारी बेटी - रोशनी - भी हमारी ही तरह जिज्ञासु स्वभाव की है। बहुत सारी चुनौतियों के बावजूद जिस बात ने मुझे भौतिकी के काम में कायम रखा है वह हैं मेरे पति और मेरे सास-ससुर का समर्थन।

अब तक मैंने केवल सकारात्मक प्रभावों का ही जिक्र किया है। भौतिकी को अपना कैरियर बनाने में जो नकारात्मक अनुभव हुए, उनकी बात नहीं की है। बदकिस्मती यह है कि एक शोध वैज्ञानिक के रूप में खुद को स्थापित करने की कोशिशों में बहुत-सी बाधाएँ रही हैं। जिन भेदभावों का मैंने सामना किया है वे एक पुरुष-प्रधान वैज्ञानिक व्यवस्था की देन हैं जिसके पूर्वाग्रहों ने स्त्री और पुरुष, दोनों पर असर डाले हैं। जिस तरह के भेदभाव का सामना मैंने पुरुष वैज्ञानिकों के कारण किया है, कभी-कभी लगभग वैसा ही महिला वैज्ञानिकों के द्वारा भी महसूस किया है। जब भी मैंने इस विषय पर एक तार्किक चर्चा की कोशिश की, मुझे चर्चा खत्म कर देने वाले प्रत्युत्तर ही मिले हैं। ऐसे में एक आम जवाब कि ''पुरूष भी तो ऐसे भेदभाव सहते हैं''

मिलता रहा हैं यह तो कोई कैफियत न हुई। यह तो यूँ है कि नस्लभेद को वाजिब ठहराने के लिए जाति-प्रथा की बात करो, या जाति-भेद को सही बताने के लिए रंगभेद की।

यह मेरा चुनाव था कि मैं एक वैज्ञानिक बनूँ। कि मैं भारत में रहूँ और काम करूँ। कि मेरा एक बच्चा हो, एक परिवार हो। अगर वैज्ञानिक व्यवस्था मेरे जैसे लोगों के साथ भेदभाव करती है तो वह इस देश की आधी प्रतिभाओं से महरूम रह जाएगी। यह एक ऐसा प्राकृतिक संसाधन है जिसे गँवाने का दुस्साहस भारत नहीं कर सकता।

1951 के मध्य के आस-पास मैंने कोलकाता की खैरा प्रयोगशाला में प्रो. एस.एन. बोस के साथ अपनी पीएच.डी. पर काम करना शुरू किया। उन्होंने मुझे सलाह दी कि मैं भारत के विभिन्न इलाकों की मिट्टी (क्ले) की संरचना पर खोजबीन करूँ। उनका सुझाव था कि मुझे एक्स-रे के अलावा उष्मीय और रासायनिक विश्लेषण भी करना चाहिए और यह भी कूलिज की तरह का एक एक्स-रे मशीन मैं खुद बनाऊँ जिसे खोल-खालकर कहीं भी अपनी मर्जी से दोबारा जोड़ा जा सके।

उस समय खैरा प्रयोगशाला में हम कोई दस लोग प्रायोगिक शोध में लगे थे। हममें से हरेक अपनी जरूरत के मुताबिक अपने-अपने उपकरण खुद तैयार करते थे। हमारी प्रयोगशाला का यह एक अलिखित नियम था। अनुभवी शोध छात्र नए विद्यार्थियों को काम करने में मदद करते थे और प्रो. बोस लगातार प्रयोगशाला में आ रही दिक्कतों और हमारी प्रगति की खोज-खबर रखते थे। सहपाठियों के बीच और सम्बन्धित विभागों में काम कर रहे लोगों के साथ भी एक सृजनात्मक सहयोग का माहौल हुआ करता था। इस तरह से विज्ञान करने में हम सबको मजा भी आता था और उत्साह भी रहता था।

आज-कल, शोध की गति को तेज करने के उद्देश्य से आसानी से मिलने वाले, महँगे, आयातित उपकरणों को खरीदने का चलन हो गया है। अगर बोस के द्वारा स्थापित आदर्श का पालन किया जाता, तो धीमी गति के बावजूद, हमारे देश में एप्लायड साइंस के क्षेत्र में एक अधिक आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी वैज्ञानिक संस्कृति का विकास शायद संभव हो पाता।

हमारी एक्स-रे मशीन में लगने वाले उच्च वोल्टेज ट्रांसफॉर्मर का निर्माण

हमारे विश्वविद्यालय के एप्लाइड साइंस विभाग में किया गया था। अपनी एक्स-रे मशीन को हमने डॉ. बिधान राय के घर के पीछे इकट्ठा हुए दूसरे विश्वविद्युद्ध के कबाड़ में से तैयार किया था। और बाकी के हिस्से हमारे विभाग की वर्कशॉप में बनाए गए थे।

एक्स-रे प्रयोशाला में की गई हमारी कोशिशों से आखिरकार, लगभग 50 तरह की मिट्टी के नमूनों को काओलिनाइट, मॉन्टमोरिल्लोनाइट, इल्लाइट, वर्मीक्यूलाइट, क्लोराइट आदि वर्गों में पूरी तरह से वर्गीकृत किया जा सका। इस खोजबीन के नतीजों को 1955 में एकत्र किया गया। 1956 में प्रो. बोस कोलकाता विश्वविद्यालय से सेवा निवृत हो गए और हम लोगों ने प्रो. कमलाक्षी दासगुप्ता के सहयोग से मिट्टी के इन नमूनों की संरचना का और बारीक एक्स-रे अध्ययन किया।

उस समय से आज तक जिलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, सेन्ट्रल ग्लास एण्ड सिरेमिक रिसर्च इंस्टिट्युट, इण्डियन इंस्ट्रिट्युट ऑफ टेक्नॉलॉजी और कई और संस्थानों से मिट्टी के नमूनों के एक्स-रे अध्ययन पर कई शोध प्रबन्ध प्रकाशित हुए हैं। बहुत कम लोगों को यह पता होगा कि भारत के एक बेहतरीन थियोरोटिकल भौतिकविज्ञानी, एस.एन. बोस ने ही पहली बार देश के कई भागों से लाए गए मिट्टी के नमूनों की संरचना का एक्स-रे विश्लेषण का काम शुरू करवाया था।

- पूर्णिमा सिन्हा

सुपुर्णा सिन्हा : रमन रिसर्च इंस्टीट्यूट, बैंगुलुरू में थियोरोटिकल कंडेस्ड मैटर फिजिसिस्ट हैं। चित्रकारी और बच्चों के लिए चित्र पुस्तकें बनाने में रूचि। विज्ञान के प्रचार-प्रसार में भी चिलचस्पी रखती हैं।

(साभार, शैक्षणिक संदर्भ, अंक-6, मूल अंक-63)

अंग्रेजी से अनुवाद : टुलटुल बिस्वास : एकलव्य के प्रकाशन समूह से जुड़ी हैं।

पुस्तक : लीलावतीज डॉटर्स
सम्पादक : रोहिणी गोडबोले व राम रामास्वामी
प्रकाशक : इण्डियन एकेडमी ऑफ साइंसेज, 2008
पृष्ठ संख्या : 386, **कीमत :** तीन सौ रूपए

❐❐

विज्ञान की राह

कमर रहमान

लीलावतीज डॉटर्स पुस्तक में प्रकाशित महिला वैज्ञानिकों के विचार और उनके संघर्ष आप तक पहुँचाने का वादा हमने पिछले अंक में प्रकाशित सुपुर्णा सिन्हा के लेख में किया था। उस कड़ी को जारी रखते हुए इस बार हम आपको रूबरू करा रहे हैं कमर रहमान से। उन्होंने यह कथानक इस तरह से लिखा है मानो किसी और ने इनके बारे में लिखा हो।

बात 1950 की हैं शाहजहाँपुर कस्बा। एक पुराने प्रतिष्ठित पर्दानशी परिवार की छह साल की एक लड़की घर पर अपनी माँ का एक महिला डॉक्टर से इलाज होते देखती है। वह इस डॉक्टर से बेहद प्रभावित होती है और खुद डॉक्टर बनने का मन बना लेती है। समय गुजरता गया और जब वह अलीगढ़ के अब्दुल्ला स्कूल में नवीं कक्षा में पढ़ाई कर रही थी, तब एक दिन उसने अपनी माँ से जाकर कहा कि वह डॉक्टर बनना चाहती है। माँ को यह विचार कतई पसन्द नहीं आता क्योंकि उनकी राय में महिला डॉक्टर अपने पुरूष मरीजों से कुछ ऐसी बातें करती हैं, जिन्हें बहुत शालीन नहीं माना जा सकता। जब वह बी.एससी. में थी तब उसकी शादी हो गई। दुर्भाग्यवश उसके वैवाहिक जीवन में कुछ समस्याएँ आईं, और तब उसने तय किया कि वह ऐसा जीवन नहीं चाहती थी। किसी ऐसे व्यक्ति के साथ रहना जो उससे बिल्कुल अलग था और उसका सम्मान तक नहीं करता था, इस बात को वह स्वीकार नहीं कर सकती थी और न ही उसने किया।

अपनी कुछ महीनों की बच्ची को लेकर वह माता-पिता के घर चली आई और आगरा के सेंट जॉन्स कॉलेज में भौतिक रसायन में एम. एससी. करने के लिए दाखिला ले लिया। आगरा में उसके पिता आयुक्त थे। एक

छोटी बच्ची की देख-रेख करते हुए पढ़ाई करना बेहद मुश्किल था, लेकिन उसकी माँ ने बच्ची की देखभाल करने में बहुत मदद की और उसने अपनी पढ़ाई जारी रखी। एम. एससी. करने के बाद वह अपने माता-पिता के साथ शाहजहाँपुर वापस आ गई।

अध्यापन की शुरूआत :

एक दिन वह अपनी बहन से मिलने लखनऊ गई। वहाँ उसकी मुलाकात करामात हुसैन मुस्लिम गर्ल्स कॉलेज की प्रिंसिपल श्रीमती वसीम से हुई। वे अपने कॉलेज की उच्चतर-माध्यमिक कक्षाओं में रसायन शास्त्र पढ़ाने के लिए एक व्याख्याता की तलाश कर रही थीं। उसने कॉलेज में पढ़ाना स्वीकार कर लिया, और यह उसके जीवन का एक बहुत ही बड़ा अनुभव साबित हुआ।

युवा लड़कियों को विज्ञान पढ़ाना, उन्हें पर्किंग सीनियर और जूनियर जैसे महान वैज्ञानिकों के बारे में बताते हुए और केकुले व फिशर्स के सपनों की चर्चा करते हुए उसे गर्व महसूस होता था। लेकिन उसे अभी जीवन में और भी बहुत कुछ करना था। एक दिन वह लखनऊ विश्वविद्यालय के जैव रसायनशास्त्र विभाग में गई। वहाँ उसकी मुलाकात जाने-माने जैव रसायन शास्त्री प्रोफेसर पी. एस. कृष्णन से हुई जो अपने क्षेत्र के महारथी माने जाते थे। उसने उनसे गुजारिश की कि वे उसे अपने मार्गदर्शन में पीएच.डी. करने दें। पहले तो वे इसके लिए तैयार नहीं हुए, लेकिन फिर उसके दृढ़ संकल्प को देखते हुए उन्होंने उसे अपने विभाग में शामिल होने की अनुमति दे दी।

आनुसंधानिक कार्य :

जल्द ही (1970 में) औद्योगिक विष विज्ञान शोध केन्द्र (वैज्ञानिक और औद्योगिक शोध परिषद् - कॉउंसिल ऑफ साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च की सबसे बड़ी राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में से एक) ने जूनियर साइंटिफिक रिसर्च असिसटेंट के एक पद का विज्ञापन प्रकाशित किया। उसने इस पद के लिए आवेदन दिया, और वह चुन ली गई। चयन समिति के अध्यक्ष डॉक्टर ए. एस. पेंटल ने कहा, ''तुम इस क्षेत्र में बहुत नाम कमाओगी।''

अपनी वैज्ञानिक यात्रा में वह कई अनुभवों से गुजरी। उसने महसूस किया कि हर स्तर पर महिला को पुरूष की तुलना में अधिक मेहनत करनी पड़ती है। इस पुरूष-प्रधान समाज में किसी महिला के लिए कुछ हासिल करना और अपना नाम बनाना बेहद मुश्किल है। लेकिन उसने कभी हार नहीं मानी और अनेक अड़चनों के बावजूद वह आगे बढ़ती रही। आज, उसे अपनी निजी और शैक्षणिक उपलब्धियों पर गर्व होता है।

जीवन के लिए विष पर शोध :

विष-विज्ञान के क्षेत्र में उनका अनुभव बेहद गहन है। इस क्षेत्र में वे बड़े पैमाने पर काम कर रही हैं। फाइबर (रेशों), कणों और नैनोकणों की विषाक्तता उनकी शोध के प्रमुख विषय हैं। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विभिन्न शोध पत्रों में उनके अपने काम पर आधारित 130 लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

उन्होंने चिरपरिचित पर्यावरण और व्यावसायिक वायु प्रदूषकों, जैसे सिलिका, एस्बेस्टॉस, एस्बेस्टॉस के विकल्पों, स्लेट की धूल, गलीचे की धूल, काजल और ऐसे अन्य अत्यन्त सूक्ष्म कणों की विषाक्तता पर काम किया है। ये सब प्रदूषक पिछले कई दशकों से चर्चा का विषय रहे हें। उसने इन प्रदूषकों के सम्पर्क में आने वाली जनसंख्या पर पड़ने वाले असर को लेकर कई जानपदिक रोग-वैज्ञानिक (एपीडी-मिऑलॉजिकल) सर्वेक्षण किए जिसमें आणविक स्तर पर जैव-सूचकों (बायो मार्कर्स) का इस्तेमाल करते हुए स्वास्थ्य के लिए होने वाले खतरों को आँकने के लिए विश्लेषण किया गया।

उनके अध्ययनों से पता चला कि एस्बेस्टॉस, ऑक्सीजन और नाइट्रोजन की प्रतिक्रियाशील प्रजातियों को उत्पन्न करता है। ये मुक्त रेडिकल्स संकेत प्रपातों (signalling cascades) को सक्रिय करते हैं और डीएनए को नुकसान पहुँचाते हैं, जिसकी वजह से जींस की संरचना और कोशिकीय विषक्तता परिवर्तित हो जाती हैं, जो एस्बेस्टॉस से जुड़ी फेफड़ों की बीमारियों के रोगजनन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नैनों कणों को उनकी सम्भावित विषाक्तता के लिए जाँचा गया। अध्ययनों से दर्शाया है कि कुछ कृत्रिम रूप से निर्मित किए जाने वाले नैनों कण विषैले होते हैं, और उनके विषविज्ञानीय मूल्यांकन की आवश्यकता है। स्लेट की धूल के विषैले प्रभाव के बारे में कुछ महत्वपूर्ण अध्ययन मन्दसौर में किए गए जिनसे ऐसी धूल से उपजने

वाली बीमारियों के निदानात्मक परीक्षण (डायग्नोस्टिक टेस्ट) उपचार और बचाव के तरीकों को विकसित करने में मदद मिली है।

उन्होंने संगठित और असंगिठत दोनों क्षेत्र के एस्बेस्टॉस पर आधारित उद्योगों पर गहन अध्ययन कर उन कारणों को उजागर किया जिनके चलते भारतीय उद्योगों में बीमारियाँ बढ़ रही हैं। उनके अध्ययन से यह साबित हुआ कि सिगरेट के धुएँ और केरोसीन की कालिख, दोनों के संयोग से उनके सम्पर्क में आने वाली जनसंख्या में बीमारियाँ बढ़ जाती है। भारत में एस्बेस्टॉस पर आधारित उद्योगों में किए गए इन गहन अध्ययनों ने उन लोगों की मुसीबतों को उजागर किया जिन्हें अपने कामकाज के चलते ऐसे खतरों का सामना करना पड़ता है। (घरों में खाना बनाने के लिए ईंधन के रूप में कैरोसीन का इस्तेमाल करनेवाली स्त्रियाँ, और रोजी रोटी के लिए एस्बेस्टॉस उद्योग में काम करनेवाले मजदूर)। ये निष्कर्ष राष्ट्रीय स्तर पर बहुत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनके आधार पर एस्बेस्टॉस के क्षेत्र में काम करने वाले मजदूरों को धुम्रपान छोड़ने, और लोगों को खाना बनाने के अपरिशोधित (unprocessed) ईंधन का इस्तेमाल न करने की सलाह दी गई।

गलीचे बनाने वाले कुछ संगठित और असंगठित कारखानों में भी सर्वेक्षण किए गए। वहाँ काम करने वाले मजदूरों के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारणों का अध्ययन किया गया। उन्होंने भारतीय घरों में जैव-ईंधन (खाना बनाने के लिए जलाए जाने वाले गोबर के उपलें आदि) की वजह से घर के भीतर होने वाले वायु प्रदूषण का भी अध्ययन किया। उन्होंने साबित किया कि किस तरह जैव-ईंधन की वजह से बढ़ रहे कणात्मक (पार्टिकुलेट) वायु प्रदूषण के चलते साँस सम्बन्धी बीमारियों और मौतें बढ़ रही हैं।

उन्होंने एस्बेस्टॉस की खदानों के इलाकों में भी गहन अध्ययन किया, जिसमें एस्बेस्टॉस की अलग-अलग किस्मों की पहचान और प्रभावित जनसंख्या की सम्पूर्ण चिकित्सकीय जाँच की गई। साथ ही जोखिम आँकने के लिए विशेष जैव-सूचकों को पहचाना गया। महिलाओं और उनके व्यावसायिक जोखिमों पर विस्तृत शोध किया गया। इससे कई संगठित और गैर-संगठित क्षेत्रों में, विषैले रसायनों के सम्पर्क में काम करने वाली महिलाओं की विभिन्न समस्याएँ सामने आईं। इस विषय पर उन्होंने एक फिल्म भी बनाई, जिसे भारत सरकार की ओर से सर्वश्रेष्ठ वीडियो फिल्म का पुरस्कार मिला।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति :

कणात्मक वायु प्रदूषक और महिलाओं की समस्याएँ विषय पर उनके शोध कार्य के आधार पर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से कई महत्वपूर्ण परियोजनाएँ शुरू की गई जिन्हें अमेरिका, जर्मनी, भारत सरकार और लन्दन की कॉमनवेल्थ साइंस कॉउंसिल ने आर्थिक मदद की।

उनकी वैज्ञानिक उपलब्धियों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सराहा गया, और इसी सिलसिले में उन्हें विदेशों में कई शोध यात्राओं के लिए आमंत्रित किया गया, समीक्षात्मक लेख लिखने के लिए कहा गया और अन्तर्राष्ट्रीय बैठकें आयोजित कराने की जिम्मेदारियाँ सौंपी गई।

उन्हें साझा-कार्यक्रम के तहत मेहमान वैज्ञानिक के रूप में कई अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त संस्थानों में बुलाया गया। उन्हें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में व्याख्यान और प्रमुख भाषण देने के लिए आमंत्रित किया जाता रहा है।

विज्ञान के क्षेत्र में देश की प्रगति की बात हो या किसी सामाजिक पहलू की या फिर युवा वैज्ञानिकों के विकास की, उन्होंने हमेशा सभी क्षेत्रों में विभिन्न क्षमताओं में सक्रिय भागीदारी की है। अब 63 वर्ष की आयु में उनका सपना है कि वे उन लोगों के लिए एक केन्द्र स्थापित कर सकें जो अपने व्यवसाय और कामकाज के कारण स्वास्थ्य-सम्बन्धी खतरों का सामना करते हैं।

कमर रहमान : लखनऊ विश्वविद्यालय के शोध विभाग की डीन हैं, साथ ही हमदर्द विश्वविद्यालय, दिल्ली से भी प्रोफेसर के तौर पर सम्बद्ध। उत्तर प्रदेश रत्न सम्मान से सम्मानित। इनके पसन्दीदा विषय पल्मोनरी बायोकेमेस्ट्री जीनों टॉक्सिसिटी और मॉलेक्युलर एपिडीमिऑलॉजी हैं।

अंग्रेजी से अनुवाद : मनीषा शर्मा : शिक्षा और व्यवसाय से चिकित्सक हैं। विज्ञान और शिक्षा में गहरी दिलचस्पी। अनुवाद करने का शौक है। दिल्ली में रहती हैं।

लीलावतीज डॉटर्स पुस्तक का सम्पादन रोहिणी गोडबोले व राम रामास्वामी ने किया है।

प्रकाशक : इण्डियन एकेडमी ऑफ साइंसेज।

(साभार, शैक्षणिक संदर्भ, अंक-7, मूल अंक-64)

❐❐

मैं वैज्ञानिक क्यों बनी ?

बिंदु ए. बंबाह

विज्ञान के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी पर आस-पास के परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विज्ञान को अपना कार्य क्षेत्र चुनने के पक्ष में शायद सबसे पहला प्रभाव इस बात से पड़ता है कि स्कूल में गणित और विज्ञान पर कितना जोर दिया जाता है। पढ़ाने वाले महिला और पुरूष शिक्षक भी इस बारे में उनकी सोच को प्रभावित करते हैं कि महिलाएँ विज्ञान के क्षेत्र में सफल हो सकती है या नहीं।

मैं बहुत भाग्यशाली भी कि स्कूल के दिनों में मेरे सामने अनेक सकारात्मक आदर्श शिक्षक थे जिन्होंने मुझे बहुत प्रोत्साहन दिया और मेरी वैज्ञानिक समझ को जगाया। किसी वैज्ञानिक विधि का सबसे पहला अनुभव मुझे 1967 में हुआ जब मैं दस वर्ष की थी। उसी वर्ष डॉक्टर क्रिश्चियन बर्नार्ड ने पहला हृदयारोपण किया था। हमारी शिक्षिका मिस जेसिका केलर, जो अत्यंत उत्साही विज्ञान शिक्षिका थीं, कक्षा में सुअर का हृदय लेकर आईं और हमें पूरी प्रक्रिया समझाई। वह वाकई चकित कर देने वाला अनुभव था। उसके बाद 1959 में पहली बार मानव चन्द्रमा पर पहुँचा और तब हमें चन्द्रमा के पत्थरों को देखने के लिए (वेधशाला) ले जाया गया। ब्राह्य-अंतरिक्ष के संसार ने मुझे प्रकृति के भौतिक पहलुओं का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया।

बाद में, हाई स्कूल में हमारी भौतिक विज्ञान की शिक्षिका सिस्टर विंसेट ने क्वांटम मैकेनिक्स और उसके सभी वैज्ञानिक रहस्यों के साथ हमारा परिचय कराया। हमारे रसायन शास्त्र के शिक्षक मिस्टर प्यारा सिंह ने बेंजीन की संरचना समझाने के लिए हमें केकुले के साँप की कहानी सुनाई। मैं इस बात के लिए अपने शिक्षकों की बहुत ऋणी हूँ कि उन्होंने कभी हमारे साथ जेंडर आधारित भेदभाव नहीं दर्शाया। उन्होंने हमारे उत्साह को बढ़ाया और

बताया कि अपने अधिकारों के लिए एक जुट होकर लड़ते हुए लक्ष्य प्राप्ति तक आगे बढ़ते जाना होगा। जब जब मैं जीवन के सभी पहलुओं में घुस चुके भौतिकवाद और विद्यार्थियों की परीक्षा-केन्द्रित शिक्षा को देखती हूँ, तो मुझे यह महसूस होता है कि आज हमारे पास स्कूलों में ऐसे समर्पित और प्रेरणा देने वाले शिक्षक होना बहुत जरूरी है।

मुझे कभी भी विज्ञान में इतना मजा नहीं आया था जितना मुझे अपने स्कूल के वर्षों के दौरान आया। इसीलिए जब आगे के कैरियर के लिए विषय चुनने की बात आई तो मुझे स्पष्ट था कि मैं विज्ञान पढ़ना चाहती हूँ।

काफी सोच-विचार के बाद मैंने अपने ही शहर में पंजाब विश्वविद्यालय के भौतिकी के समेकित पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने का निर्णय लिया, इस तथ्य के बावजूद कि राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिभा खोज परीक्षा में मेरी सफलता के कारण मुझे पिलानी के बिड़ला इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एंड टेक्नॉलॉजी (बिट्स) और कानपुर के भारतीय तकनीकी संस्थान (आई.आई.टी.) से उनके समेकित कार्यक्रमों में प्रवेश के प्रस्ताव मिले थे। यह मेरे जीवन का पहला निर्णय था जो मेरे जेंडर से प्रभावित था। मुझे यह स्वीकार करना होगा कि लड़कियों के स्कूल में पढ़ाई करने के कारण अचानक पुरूषों के साथ प्रतिस्पर्धा के बारे में सोचकर मैं हतोत्साहित हो गई थी।

शायद यह उन बहुत सारे कायरतापूर्ण निर्णयों में से एक था जो मेरे कैरियर के दौरान घटे थे। लिंग-भेद से प्रेरित मेरे इन्हीं कृत्यों के कारण मैं वैज्ञानिक के रूप में अपनी वास्तविक क्षमता को पूरी तरह हासिल नहीं कर पाई। और इस तरह मैंने एक ऐसी विशिष्ट विद्यार्थी होते हुए भी जिसका नाम राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिभा परीक्षा में देश के सर्वोपरि 10 विद्यार्थियों में आया था, घर पर ही रहते हुए कॉलेज जाने का एक आसान विकल्प चुना जबकि मैं और कहीं भी जा सकती थी। क्या यह मेरा चुनाव था ? या भयभीत रहने की मनोवृति जो हमारे समाज द्वारा युवा लड़कियों में पैदा कर दी जाती है ? एक बात मैं निश्चित रूप से जानती हूँ कि यदि मैं इन्हीं सब योग्यताओं के साथ लड़का रही होती तो ये सब संशय पैदा ही नहीं होते और मैंने विज्ञान के इस प्रतिस्पर्धात्मक जगत में अधिक आत्मविश्वास के साथ साहसपूर्ण कदम बढ़ाया जोता। सौभाग्यवश आजकल युवा लड़कियों के लिए परिस्थितियाँ

बदल गई हैं। सर्वोत्कृष्ट संस्थानों में शायद अब उतना लिंग आधारित भेद-भाव नहीं होता और जो शंकाएँ मेरे मन में थीं। मुझे उम्मीद है कि शायद वे अब कोई मुद्दा नहीं रह गई है।

उस समय मेरा लक्ष्य गणितीय जीव-भौतिकी का अध्ययन करना था, लेकिन तब मैं बुनियादी कणों के विचित्र एवं अद्‌भुत संसार के आकर्षण के बारे में नहीं जानती थी। एम.एससी. में सौभाग्यवश मुझे दो बहुत ही प्रेरणादायक शिक्षक मिले, डॉक्टर जतिन्दर बजाज और प्रोफेसर एम. पी. खन्ना जो आधारभूत कण-भौतिकी को लेकर उत्साह से भरे रहते थे। वह एक मोहक और उत्तेजित करने वाला संसार था और मैं उस ओर खिंची चली गई। उसमें वह सारी गणितीय शुद्धता और जटिलता थी। जो मुझे सहज रूप से अच्छी लगती थी। वह अमूर्त भी था और साथ ही नैसर्गिक भी। इसलिए मैंने आधारभूत कण भौतिकी में पीएच.डी. करने का निर्णय लिया। उस समय जो मैं नहीं समझ पाई वो यह था कि अपने मूलतः भयभीत रहने वाले लेकिन प्रतियोगी स्वभाव के साथ मैं संसार के सबसे ज्यादा गलाकाट स्पर्धावाले और सटीकता की मांग करनेवाले कार्य-क्षेत्र में प्रवेश कर रही थी। वहाँ का संसार तो एक किस्म का जंगल था और मैं थी एक छोटे कस्बे की लड़की जिसके मन में वर्षों से भय पैदा किया जा रहा था, जो इस सुन्दर किन्तु खतरनाक संसार के लिए तथा इस क्षेत्र में व्याप्त पुरूष-प्रधानता के लिए कतई तैयार नहीं थी।

अपने कन्धों पर एक बड़ी जिम्मेदारी और आधारभूत कण-भौतिकी में कुछ करने की अभिलाषा के साथ मैंने शिकागो विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। नए विद्यार्थियों की इस कक्षा में मैं एकमात्र महिला थीं। मैं अत्यन्त प्रतिस्पर्धात्मक युवा पुरुषों से घिरी हुई थी जिन्होंने मुझे कतई संजीदगी एवं गंभीरता से नहीं लिया। हालाँकि मुझे प्रोफ्रेसर येइचिरो नांबु जैसे सुप्रसिद्ध भौतिकशास्त्री के साथ काम करने का सौभाग्य मिला। वे बहुत ही प्रेरणास्पद थे पर साथ ही उनसे भय भी लगता था, तथापि मैंने उनसे बहुत कुद सीखा। मैं और बहुत कुछ सीख सकती थी अगर मैं पुरूष-प्रधान संसार में औरत होने की समस्या से जूझ नहीं रही होती।

पहली बार मुझे महसूस हुआ कि किसी शान्त अमौलिक महिला की

तुलना में एक चिन्तनशील, अन्प्रेरित महिला के सफल होने की संभावना कम होती है। चारों ओर ऐसा जबर्दस्त माहौल बनाया जाता था कि एक नम्र और बहुमुखी रूप से बुद्धिजीवी महिला वैज्ञानिक शोध के कठिन परिश्रम को झेलने के लिए पर्याप्त रूप से कठोर नहीं होती। भौतिक शास्त्र के लिए मेरा प्रेम और भौतिक शास्त्री होने की तीव्र लगन का, उस माहौल में ढल जाने और एक स्वस्थ सामाजिक जीवन की मेरी जरूरत के साथ हमेशा अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता था। आखिरकार, अमेरिका में शोध के विभिन्न अवसरों के बावजूद मैंने भारत वापस आने का निर्णय लिया। मैं अमेरिका में भौतिकशास्त्र से जुड़ी एक महिला पर पड़ने वाले दबावों को नहीं झेल सकी। यह बेहद कठिन था कि एक ही समय आपको एक वैज्ञानिक और एक महिला के रूप में स्वीकार किया जाए। यह स्वीकार्यता इसलिए भी कठिन थी क्योंकि भौतिकशास्त्र पूरी तरह से 'पुरूषों का क्लब' था। इन सबसे मुझे यह सन्देश मिला कि आप एक महिला को कामयाब होना है तो उसे खोजकर्ता होने की बजाय किसी का अनुयायी बनना होगा।

मैंने महसूस किया कि भारत में महिलाओं के प्रति इस तरह का भेदभाव यद्यपि खुले तौर पर नहीं था, परन्तु दबे रूप में वही स्थिति मौजूद थी। नेतृत्व पुरुषों के हाथ में था लेकिन महिलाओं का भी एक हद तक उचित प्रतिनिधित्व था। वे एक स्तर तक आगे बढ़कर अपने लिए एक सुविधापूर्ण क्षेत्र बना सकती थीं, और फिर से उसी दायरे के भीतर विज्ञान का काम करती रहतीं। यह काम करने के लिए ठीक माहौल था, परन्तु अचानक एक स्तर तक पहुँचकर समझ में आता है कि आपके भीतर अब स्पर्धात्मक भावना बची ही नहीं है। अमेरिका के विपरीत जहाँ विज्ञान के क्षेत्र में कार्यरत थोड़ी-सी महिलाएँ एक-दूसरे को सहारा देती थीं, मैंने भारत में पाया कि भौतिकशास्त्र में महिलाएँ एकजुट न होकर एक-दूसरे के खिलाफ प्रतिस्पर्धा में लगी रहती थीं। अमेरिका के समान यहाँ न तो आपस में कोई बहनों जैसी भावना थी और न है, शायद इसलिए क्योंकि यहाँ हर महिला वैज्ञानिक, पुरुष वैज्ञानिक समुदाय में अपनी स्वीकार्यता बढ़ाने में लगी रहती है। महिलाओं की योग्यता का बचाव करना तब बेहद मुश्किल हो जाता है, जब आपकी टांग खींचने वाला व्यक्ति कोई महिला ही हो।

जैव-भौतिकशास्त्री एवलिन फॉक्स केसर द्वारा पूछे गए एक प्रश्न का मुझ पर हाल ही में बहुत प्रभाव पड़ा। विज्ञान की प्रकृति उस पुरुषवादी सोच के तरीकों से कहाँ तक सम्बन्धित है जिसने इसे पैदा किया, और क्या इस तरह से रचा गया विज्ञान वाकई वैश्विक और वस्तुनिष्ठ हो सकता है ? मेरा विचार है कि लिंग-आधारित भेदभाव और विज्ञान, दोनों ही सामाजिक रूप से बनाए गए दृष्टिकोण हैं। ऐतिहासिक रूप से, सामाजिक रूप से बनाए गए भावना-प्रधान स्त्रियोचित गुणों के विपरीत, सामाजिक रूप से गढ़े गए तर्कप्रधान पुरुषोचित गुणों से विज्ञान का गठजोड़ कहीं ज्यादा मजबूत है। हमें अपने ध्यान का केन्द्र बदलने की, और वैज्ञानिकों में विविधता बढ़ाने की आवश्यकता को स्वीकार करने की बेहद जरूरत है, और स्त्री-पुरुष समानता इसकी कुंजी है।

सैद्धान्तिक भौतिकशास्त्र गणितीय रूप से साफ-सुथरा है; यह हमारे आस-पास की दुनिया को आधारभूत ढंग से समझाता है। अगर और अधिक महिलाओं को इसको अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया जाए तो यह अधिक समृद्ध होगा।

लिंगभेद के कारण हुई सभी मुश्किलों ने मुझे मजबूत और कामयाब होने के लिए अधिक महत्वकांक्षी भी बनाया है, और मैं विज्ञान के क्षेत्र में बिना किसी खेद या हीनभाव के काम करती हूँ। मुझे उम्मीद है कि मेरे अनुभव इसी तरह के विकल्पों से जूझ रही युवा लड़कियों की मदद करेगी। उन्हें इस क्षेत्र में जाना चाहिए, एक-दूसरे की मदद करना चाहिए और अवसरों का पूरा लाभ उठाना चाहिए।

बिंदु ए. बंबाह : 1983 में शिकागो स्कूल ऑफ फिजिक्स से पीएच.डी. की। यूनेस्को के 'यंग साईंटिस्ट अवार्ड' से सम्मानित और पी. एम. एस. ब्लैकेट स्कॉलरशिप की विजेता रहीं। वर्तमान में सैद्धान्तिक उच्च ऊर्जा भौतिकी और गतिकी विषयक पद्धतियों (Theoretical High Energy Physics and Dynamical Systems) पर कार्य कर रही हैं।

अँग्रेजी से अनुवाद : मनीषा शर्मा : शिक्षा से चिकित्सक हैं। विज्ञान और शिक्षा में गहरी दिलचस्पी। अनुवाद करने का शौक है। दिल्ली में रहती हैं।

(साभार, शैक्षणिक संदर्भ, अंक-9, मूल अंक-66)

❐❐